डाक्टर एन. सी. जोशी, एफ. ए. सी. एस.

डाक्टर साहब, मुझे आपने दिया पुन: नव जीवन ;
गीत गा सकूँ फिर, विधि का था उसमें गूढ़ प्रयोजन !
विश्रुत सर्जन आप, एक्स रे से कर रोग निरूपण ,
इंफ्रा रेड, अल्ट्रा वायलेट से भरते नव संजीवन !
जीवन सिद्ध, रहस्य किरण का नहीं आप से गोपन ,
चिर उपकृत, मैं स्वर्ण किरण करता हूँ स्नेह समर्पण !
मधुर स्नेह के स्वर्ण हास्य से भरे आप का यह मन ,
स्वर्ण किरण अंतर की आभा अंतर में कर वितरण !

विज्ञापन

अपनी दीर्घ अस्वस्थता के बाद स्नेही पाठकों का स्वर्ण किरणों से अभिनंदन करने में मुझे हर्ष हो रहा है। उनके वातायनों में यदि स्वर्ण किरण प्रवेश पा सकी तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा।

सीता
मद्रास, १० मार्च, १९४७

श्री सुमित्रानंदन पंत

सूची

अभिवादन

हँसी, लो, स्वर्ण किरण,
शिखर आलोक वरण!
विचरती स्वर्ण किरण
धरा पर ज्योति चरण!

जगे तरु नीड़ सकल
,खगों की भीड़ विकल,
पवन में गीत नवल
गगन में पंख चपल!
अधखिले स्वप्न नयन
चूमती स्वर्ण किरण!

सरों में हँसी लहर
ज्योति का जगा प्रहर,
चेतनाँ उठी सिहर
स्पर्श यह दिव्य अमर!
तुहिन के स्वर्णिम क्षण
वितरती स्वर्ण किरण!

विजय से दीप्त गगन
ध्वजा सी उड़ती पवन,
धरा रज नव चेतन
खिला मन का लोचन !
युगों का तमस हरण
करे यह स्वर्ण किरण !

खुला अब ज्योति द्वार
उठा नव प्रीति ज्वार,
सृजन शोभा अपार !
कौन करता ऽभिसार
धरा पर ज्योति भरण,
हँसी, लो, स्वर्ण किरण !

सम्मोहन

जादू बिछा दिया इस भू पर !
तुमने सोने की किरणों की
जीवन हरियाली बो बो कर !

फूलों से उड़ फूल, रँगों से
निखर सूक्ष्म रँग उर के भीतर
बुनते स्वप्न मधुर सम्मोहन,
स्वर्ण रुधिर से अंतर थर् थर् !

स्पंदित हृदय आज कण कण में,
भाषा बनी द्रुमों की मर्मर,
लहरें उर पर देतीं आँचल,
कमल मुखों से जीवित से सर !

प्रणय दृष्टि दे दी नयनों को,
प्राणों में संगीत दिया भर,
स्वर्ण कामना का घूँघट नव
डाल धरा के मुख पर सुंदर !

निज जीवन का कटु संघर्षण
भूल गया यह मानव अंतर
जग जीवन के नव स्वप्नों की
ज्योति वृष्टि में स्नान कर अमर !

स्वर्ण ज्वाल में तुमने जीवन
दिया लपेट, हृदय में हँस कर,

मर्म प्रीति का झरता अविरत
इन प्राणों में स्वर्णिम निर्झर !
स्वर्ग धरा को बाँध पाश में
स्वर्ण चेतना के चिर सुखकर
स्वप्नों को तुमने जीवन की
देही देदी, मर्त्य शोक हर !

रजतातप

(आत्म निर्माण)

आज चेतना के प्लावन सा
निखर रहा रजतातप सुंदर,
ऊषा संध्या के स्वप्नों के
स्वर्णिम पुलिनों को मज्जित कर !

चंद्रातप सी स्निग्ध नीलिमा
यज्ञ धूम सी छाई ऊपर,
किरणों के स्पर्शों से गुंफित
ज्योति वृत्त सा खिंचा दिगंतर !

किन स्वर्गिक शिखरों को छूकर
वहता आज समीरण मंथर !
गंध हीन, निज सूक्ष्म गंध से
सहसा प्राणोज्वल कर अंतर !

निर्मलता ही जल धारा सी
वह वह धोती भू के रज कण,
भूतों की चिर पावनता में
हृदय सहज करता अवगाहन !

लौट मुग्ध विस्मित लोचन मन
अंतर्मुख करते अवलोकन,
निभृत स्पर्श पाकर निसर्ग का
आत्मा गोपन करती चिन्तन !

श्रांत इंद्रियाँ अनुप्राणित हो
देवों का करतीं आवाहन,
अंतर्नभ के दुग्धामृत से
भरें पुनः वे इन में जीवन !

दीप शिखा सी जगे चेतना
मिट्टी के दीपक से उठकर,
तैल धारवत् मर्म स्नेह पा
स्वर्ग विभा से दे भूतल भर !
अंतरतम की नीरवता में
जाग्रत हो सुर मादन गुंजन,
खंडित भव विशृंखलता को
बाँध अमर गति लय में चेतन !

फिर श्रद्धा विश्वास प्रेम से
मानव अंतर हो अंतःस्मित,
संयम तप की सुंदरता से
जग जीवन शतदल दिक् प्रहसित !
व्यक्ति विश्व में व्यापक समता
हो जन के भीतर मे स्थापित,
मानव के देवत्व से ग्रथित
जन समाज जीवन हो निर्मित !

करें आत्म निर्माण लोकगण

वहिरंतर जड़ चेतन वैभव
संस्कृति में कर निखिल समन्वित !
सहृदयता का सागर हो मन
हृदय शिला हो प्रेरणा सरित,
भू जीवन के प्रति रुचि जन में
मानव के प्रति मानव प्रेरित !

प्राणों के स्तर स्तर में पुलकित
अमर भावनाएँ हों विकसित,
प्रीति पाश में वँध सुंदरता
काम भीति से हो अकलंकित !
देव वृत्तियों के संगम में
डूबें चिर विरोध संघर्षण,
जीवन के संगीत में अमित
परिणत हो धरती का क्रंदन !

ऊर्ध्वग शृंगों के समीर को
आओ, साँसों से उर में भर
चिर पवित्रता से हम तन का
मन का पोपण करें निरंतर !
मुक्त चेतना के प्लावन सा
उमड़ रहा रजतातप निर्भर,
आज सत्य की वेला वहती
स्वप्नों के पुलिनों के ऊपर !

हिमाद्रि

मानदंड भू के अखंड हे,
पुण्य धरा के स्वर्गारोहण,
प्रिय हिमाद्रि, तुमको हिमकण से
घेरे मेरे जीवन के क्षण!
मुझ अंचलवासी को तुमने
शैशव में आशी दी पावन,
नभ में नयनों को खो, तब से
स्वप्नों का अभिलाषी जीवन!

कब से शब्दों के शिखरों में
तुम्हें चाहता करना चित्रित
शुभ्र शांति में समाधिस्थ हे
शाश्वत सुंदरता के भूभृत्!
बाल्य चेतना मेरी तुममें
जड़ीभूत आनंद तरंगित,
तुम्हें देख सौन्दर्य साधना
मेरी महाश्चर्य से विस्मित!

जिन शिखरों को स्वर्ण किरण नित
ज्योति मुकुट से करतीं मंडित,
जिन पर सहसा स्खलित तड़ित
हो उठती निज आलोक से चकित!
जिन शिखरों पर रजत पूर्णिमा
सिन्धु ज्वार सी लगती स्तंभित,

जिनकी नीरवता में मेरे
गीत स्वप्न रहते थे झंकृत !

जिनकी शीतल ज्वाला में जल
बनी चेतना मेरी निर्मल,
प्राण हुए आलोकित जिनके
स्वर्गोन्नत सौन्दर्य से सजल !
हृदय चाहता काव्य कल्पना को
किरीट पहनाना उज्वल
स्मृति में ज्योति तरंगित स्वर्गिक
शृंगों के आलोक का तरल !

वसुधा की महदाकांक्षा से
स्वर्ग क्षितिज से भी उठ ऊपर
अंतर आलोकित से स्थित तुम
अमरों का उल्लास पान कर !
उरोभार से तरुण धरणि के
सोया स्वर्ग शीष धर जिसपर,
तुम भारत के शाश्वत गौरव
प्रहरी से जागरित निरंतर !

रवि की किरणें जिसे स्पर्श कर
हो उठती आलोक निनादित,
जिस पर ऊषा संध्या की छवि
आदि सृष्टि सी ही स्वर्णांकित !

इन्दु स्फीत तुम स्फटिक धवलिमा
के क्षीरोदधि से हिल्लोलित
ज्योत्स्ना में थे स्वप्न मौन
अप्सरा लोक से लगते मोहित !

नवल प्रवालों की रत्नश्री
अहरह रहती ज़हाँ मर्मरित ,
देवदारु की चारु सूचियों से
प्रिय तलहटियाँ रोमांचित !
रंग रूप से रहित वहाँ तुम
चिर दिगंत स्मिति से थे शोभित ,
आदि तत्व से, अपनी ही शोभा
विलोक मानो अनिमेषित !

नीली छायाएं थीं तन पर
लगतीं आभा की सी सिकुड़न ,
इंद्र किरण मंडल से दीपित
उड़ते थे शत हँसमुख हिमकण !
स्वर्दूतों के पंखों से घिर
तड़ित चकित हिम के रोमिल घन
रंगों मे वेष्टित रखते थे
तुमको हे आलोक निरंजन !

प्रति वत्सर आती थी मधुऋतु
सद्यःस्फुट देही ले कुसुमित

चीर रश्मियों को, फूलों के
अंगों में निज कर शत रंजित !
खुलती पंखड़ियों की कंचुक
सौरभ श्वासों से थी स्पंदित,
मेरे शैशव को नित उसकी
गीत कोकिला रखती कूजित !

कलरव, स्वप्नातप, सुरधनु पट,
शशि मुख, हिम स्मिति, गात्र ले श्वसित,
षड्ऋतु देती थीं परिक्रमा
अप्सरियों सी सुरपति प्रेषित !
शरद चंद्रिका हो जाती थी
स्वप्नों के श्रृंगों पर विजड़ित,
हिम की परियों का अंचल उड़
जग को कर लेता था परिवृत !

रंग रंग के चित्रित पक्षी
उड़ते नभ में गीत तरंगित,
नील पीत भृंगों का गुंजन
मौन क्षणों को करता मुखरित !
ऊष्मा का सूर्यातप तुम में
लगता शीतलता सा मूर्तित,
इन्द्रचाप पुल पर, वर्षा में,
सुरबालाएं आ जातीं नित !

जग, प्रच्छाय गुहाओं में,
वाष्पों के गज भरते नव गर्जन,
चंचल विद्युत् लेखाएं थीं
लिपट दृगों से जातीं तत्क्षण!
ताराओं के साथ सहज
शैशव स्वप्नों से भर जाता मन,
उठते थे तुम अंतर में
सौन्दर्य स्वप्न शृंगों पर मोहन!

मेघों की छाया के सँग सँग
हरित घाटियाँ चलतीं प्रतिक्षण,
वन के भीतर चित्र तितलियों का
उड़ता फूलों का सा वन!
रँग रँग के उपलों पर रणमण
उछल उत्स करते कल गायन,
झरनों के स्वर जम से जाते
रजत हिमानी सूत्रों में घन!

भीम विशाल शिलाओं का
वह मौन हृदय में अब तक अंकित
फेनों के जल स्तंभों से वे
निर्झर रभस वेग से मुखरित
चीड़ों के तरु वन का तम
साँसें भरता मन में आंदोलित

दरियों की गहरी छायाएं
ज्योतिरिंगणों से थीं गुंफित !
गाते उर में क्षिप्र स्रोत,
लहराते सर तुषार के निर्मल,
सौरभ की गुंजित अलकों से
छू समीर, उर करता शीतल !
नीली पीली हरी लाल
चपलाओं का नभ जगता चंचल,
रजत कुहासे में, क्षण में,
माया प्रांतर हो जाता ओझल !

संभव, पुरा तुम्हारी द्रोणी
किन्नर मिथुनों से हों कूजित,
छाया निभृत गुहाएँ उन्मद
रति की सौरभ से समुच्छ्वसित !
औषधियाँ जल जल दरियों के
स्वप्न कक्ष करती हों दीपित,
ओसों के वन में मिलते हों
स्तन हारों के मुक्ताफल स्मित !

मदन दहन की भस्म अनिल में
उड़, अब तक तन करती पुलकित,
सती अपर्णा के तप से
वन श्री अवाक् सी लगती विस्मित !

अब भी ऊषा वहाँ दीखती
वधू उमा के मुख सी लज्जित,
द्वती चंद्र कला भी गिरिजा सी
ही गिरि के क्रोड़ में उदित !

अब भी वही वसंत विचरता
पुष्प शरों से भर दिगंत स्मित,
गंधोद्दाम धरा वह ही, पाषाण
शिलाएं पुलक पल्लवित !
अब भी प्रिय गौरा का शैशव
वर्णन करते खग पिक मुखरित,
देवदारु के पुण्य शिखर
वैसे ही शंकर से समाधि स्थित !

अभी उतरता कूर्म सानु पर
वप्र क्रीड़ा परिणत गज घन,
वातायन से मंद स्तनित कर
देता कवि संदेश आर्द्र स्वन !
अब भी अलकें उठा देखतीं
ग्राम वधू उसको सरल नयन,
शुभ्र बलाकों के दल नभ में
कल ध्वनि भर करते अभिवादन !

× × × ×

आज जीवनोदधि के तट पर
खड़ा अवांछित, क्षुब्ध, उपेक्षित,

देख रहा मैं क्षुद्र अहम् की
शिखर लहरियों का रण कुत्सित !
सोच रहा, किसके गौरव से
मेरा यह अंतर् जग निर्मित,
लगता तब, हे प्रिय हिमाद्रि,
तुम मेरे शिक्षक रहे अपरिचित !

और, पूछता मैं मन से, क्या
यह धरती रह सकती जीवित
जो तुम स्वर्गिक गरिमा भू पर
बरसाते रहते न अपरिमित !
शिखर शिखर ऊपर उठ तुमने
मानव आत्मा कर दी ज्योतित,
हे असीम आत्मानुभूति में
लीन ज्योति शृंगों के भूभृत् !

घनीभूत अध्यात्म तत्त्व से,
जिससे ज्योति सरित शत निःसृत
प्राणों की हरियाली से स्मित
पृथ्वी तुमसे महिमा मंडित !
संग सौध से चिर शोभा के
नाग दंत शृंगों से कल्पित,
स्वर्ग खंड तुम इस वसुधा पर,
पुण्य तीर्थ हे देव प्रतिष्ठित !

इन्द्रधनुष

(जीवन निर्माण)

स्वर्ग धरा के मध्य रश्मि वैभव से चित्रित,
स्वप्नों के रत्नस्मित सम्मोहन से ज्योतित,
देखो, इन्द्रधनुष से विश्व क्षितिज आलिंगित,
विजय केतु सा वह प्रकाश का तम पर शोभित!

असतो मा सद् गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्माऽमृतं गमय!

आर्ष मंत्र के ज्योति तरंगित ये उदात्त स्वर
ध्वनित आज भी अंतर्नभ में दिव्य स्फुरण भर;
असत् तमस औ' मृत्यु सलिल में हमें पार कर
सत्य, ज्योति, अमृतत्व धाम दो, जीवन ईश्वर!
अप्रकेत ज्यों सलिल आज लहराया दुस्तर,
ज्योति केतु फहराओ फिर से, मर्त्य हों अमर!

बाँधो हे, इस इन्द्रधनुष को धरती की वेणी पर
जीवन के नभ की कबरी हो स्वर्ग विभा से भास्वर!
किरणों की सतरंग स्मिति से भू के रज कण हों रंजित,
अंधकार हो पुनः दिशाओं का प्रकाश में कुसुमित!
जब जब घिरते विश्व क्षितिज पर युग परिवर्तन के घन,
मेघों के श्याम रंध्रजाल में कोई शुभ्र किरण छन
ज्योति केतु सी नर्तित हो इन इन्द्रचाप में मोहन,
स्वर्णिम स्वप्नों में लिपटा देती वसुधा के दिशि-क्षण!

गर्जन मंथित नभ से बरस धरा पर शतमुख जीवन
प्राणों की हरियाली से रोमांचित करता जन-मन !

आज उदधि के नीलांचल में बँधे निखिल देशान्तर,
वायु वर्त्म से, पंख खोल, आने को नव्य युगांतर !
आज तड़ित् के पद नूपुर में ध्वनित विश्व संभाषण,
लो, विद्युल् कटाक्ष से संभव अब दूरागत दर्शन !

आज वाष्प विद्युत् औ' विश्व किरण मानव के वाहन,
भूत शक्ति का मूल स्रोत भी अणु ने किया समर्पण;
मातृ प्रकृति ने सौंप दिया मानव को विभव अपरिमित
हरित नील जब भी भविष्य में कर लेगा वह संचित !
आज वनस्पति पशु जग को कर सकता मानव वर्धित,
गर्भाशय में जीवन अणु को ऊर्जित, विद्युत् गर्भित !
भूत रसायन प्राणि वनस्पति शास्त्र विविध अब विकसित।
दिशा काल के परिणय का रे मानव आज पुरोहित !

आओ, सोचें द्विपद जीव कैसे बन सकता मानव,
शक्ति-मत्त होकर भूदेव न बन जाए भू-दानव !
मानव संस्कृति का क्या स्वर्ग बसाएगा वह भू पर,
भीषण अणु का भू प्रकंप या छोड़ेगा प्रलयंकर !
नव मनुष्यता होगी भू संगठित कि राष्ट्र विभाजित,
अंतर्देवों से प्रेरित या भूत दैत्य से शासित ?
धरा बनेगी शांति धाम या रक्त क्षेत्र रण जर्जर,
अमृत व्योम से बरसेगा ? विष वह्नि विनाश भयंकर ?

आओ, लोक समस्याओं पर मिल कर करें विवेचन ;
विश्व सभ्यता के मुख पर से हटा मृत्यु अवगुंठन !
सर्व प्रथम, जठराग्नि के लिए हवि दें श्रम की पावन,
शत पद हो, सहस्र कर, यंत्रों से कर संघोत्पादन !
नग्न क्षुधातुर जीवन्मृत भू के असंख्य शोषित जन,
मानव तन को शोभाऽवृत कर नव युग करे पदार्पण !
आज यंत्र कौशल अर्जित, औ' विश्व योजना कल्पित,
जीव नियति मनुजों पशुओं की भी कृतार्थ हो निश्चित !
युग्म प्रीति के लिए प्राण आहुति फिर करें निरूपित
अजिन पंचशर के हित मोहक ज्योति व्यूह रच विस्तृत !
फूलों के बाणों से जीवन का मधु हो चिर संचित,
यौवन के शोभा तोरण में युवति युवक विचरें स्मित !
शोभा का मुख काम लाज के पट से कर तमसावृत
उज्झित मानव देह मोह औ' देह द्रोह से कवलित !!
स्वस्थ हृदय तारुण्य प्रणय को करें युग्म निज अर्पित,
भावी संतति को दें जीवन हव्य प्रीति का दीपित !
मातृ द्वार श्रद्धा प्रतीति के पुष्पों से हो पूजित,
प्राणों के स्वप्नों से जीवन की डाली हो मुकुलित !
सर्वाधिक रे जन शिक्षा का प्रश्न महत्, आवश्यक,
मानव के अंतर्जीवन का गत इतिहास भयानक !
जनता रे उर अंधकार की कथा करुण मर्मांतक,
शिक्षा ही बहिरंतर जनमंगल की मात्र विधायक !
अर्ध नग्न अवगुंठित, तमसावृत रे लोक असंख्यक,
और सभ्य, लघु विश्व शेष, जो जाति वर्ण के पोषक !

तर्को वादों सिद्धांतों से बुद्धिप्राण जन पीड़ित,
नीति रीति शाखा पंथों में धर्मप्राण अति सीमित;
द्रव्य मान पद के अर्जन में रत स्त्री-प्रिय नव शिक्षित,
महामृत्यु के पूजन में वैज्ञानिक, राज्य नियोजित !

शिलान्यास मानव शिक्षा का करना हमको नूतन,
आत्म ऐक्य औ' व्यक्ति मुक्ति का स्वर्ग सौध रच शोभन !
वाग् यंत्र से वाक् चित्र से वाहित कर संचित मन
जनगण में भर सकते हम चेतना रुधिर का प्लावन !

ललित कलाओं से धरती का रूप बने मनुजोचित,
शोभा के स्रष्टा हों जन, जीवन के शिल्पी जीवित !
भावी स्वप्न दृगों में, उर में हो सौन्दर्य अपरिमित,
काव्य चित्र संगीत नृत्य से जन जीवन सुख स्पंदित।

हमें विश्व संस्कृति रे भू पर करनी आज प्रतिष्ठित,
मनुष्यत्व के नव द्रव्यों से मानव उर कर निर्मित;
मानवीय एकता जातिगत मन में करनी स्थापित,
मन:स्वर्ग की किरणों से मानव मुख श्री कर मंडित।

बहिर्चेतना जाग्रत जग में, अंतर्मानव निद्रित,
बाह्य परिस्थितियाँ जीवित, अंतर्जीवन मूर्छित, मृत !
भौतिक वैभव औ' आत्मिक ऐश्वर्य नहीं संयोजित,
दर्शन औ' विज्ञान विश्व जीवन में नहीं समन्वित !
खोई सी है मानवता, खोई वसुधा प्रतिबंधित,
जाति पाँति हैं, रूढ़ि रीति हैं, देश प्रदेश विभाजित !

एकत्रित कर मनःशक्ति चेतन मानव को निश्चय
ग्लानि पराभव मृत्यु अमङ्गल पर पानी शाश्वत जय !
भेद भाव, दुर्मति, असफलता युग गति में हों मज्जित,
जीवन के रथ चक्रों से अणु लोक-सृजन में योजित !

ऊर्ध्व संचरण में रे व्यक्ति, निखिल समाज का नायक,
समदिग् गति में सामाजिकता जनगण भाग्य विधायक;
ऊर्ध्व चेतना को चलना भू पर धर जीवन के पग,
समदिक् मन को पंख खोल चिद् नभ में उठना व्यापक !
प्राणि शास्त्र को मानवीय बनना पीकर आत्माऽमृत;
मनःशास्त्र को ऊर्ध्व तथा नव भौतिक दिशि में विस्तृत;
आदर्शों को रूढ़ि रीति पाशों से होना विरहित,
सदाचार नैतिकता को नव युग आकृति में विकसित !

अंतर्जीवन के वैभव से आज अपरिचित भू-जन,
मध्यम अधम वृत्तियों से कल्पित उनका भव जीवन;
सत्य-ज्योति से वंचित भेदों से कुंठित मानव मन,
अंतर्मन प्रेरित हो उसको पाना जीवन दर्शन !
पशुओं से भी हीन, रेंगता कृमियों सा, अह, मानव,
भूल गया वह अंतर्गरिमा, होता आत्म पराभव !
प्राणि वर्ग का ईश्वर आज क्षुधार्त, विमूढ़, निरावृत,
जग वैभव से ओतप्रोत, मानव गौरव भू-लुंठित !
फिर आत्मिक ऐश्वर्य उसे श्रम तप से करना जाग्रत,
विघ्नों से निर्वाण मानव को बनना फिर महिमान्वित !

देखो हे, ऐश्वर्य प्रकृति का, उसका प्रति अणु जीवित,
उसका श्री सौन्दर्य अमित, वह सृजन हर्ष आंदोलित !
नाच रही भू हरित यौवना ज्योति ग्रहों से वेष्टित
बाहु पाश में बाँध धरा को वारिधि चिर उद्वेलित !

सायं प्रातः गाकर खग करते जीवन अभिनंदन,
सुख से सर्पित मुखर स्रोत नित, प्रीति स्रवित पिक कूजन !
संध्या ऊषा स्वर्णिम जीवन वैभव से चिर शोभन,
ज्योत्स्ना में सोई भू को नभ तकता अपलक लोचन !

हिमशिखरों का आत्मोल्लास स्वयं ज्यों विस्मय स्तंभित,
षड् ऋतुओं का छायातप शत ध्वनि वर्णों से विरचित;
रंग प्राण रे रंग जगत यह श्री सुषमा का जीवित,
रूप स्पर्श रस गंध शब्द तन्मात्राओं से झंकृत !

नील गगन में सुरधनु घन, घन उर में चपला कंपित,
तरुओं पर कलि कुसुम, कुसुम में मधु, मधु पर अलि गुंजित,
सरसी में जल, जल में लहर, लहर किरणों से चुंवित,
केवल मानव उर अन्तर-सौरभ से आज न सुरभित !
ज्योति चूड़ लहरें उठ उठ करतीं नित गोपन इंगित,
निखिल प्रकृति कहती रे उसमें अमृत सत्य अंतर्हित !

यह प्रकाश, सौन्दर्य, प्रेम, उल्लास, रंग सम्मोहन
मानव उर में इन्द्रजाल वुनते रहते हैं मोहन !
अंतर्बाह्य प्रकृति उपकरणों को संचित कर प्रतिक्षण
आओ, हम जन लोक रचें, देवों को दें आमंत्रण !

महाप्राण रे विश्व चेतना हमें चाहिए केवल,
भू मंगल के साथ आज परिणीत व्यक्ति का मंगल !
नव चेतन मनुजों से हो जग जीवन का संचालन,
आत्मोन्नति के लिए मिले अवसर, श्रम-प्रिय हों भू-जन !
मानव हो संयुक्त प्रकृति से, स्वर्ग बने भू पावन,
बहिरंतर ऐश्वर्यों से चरितार्थ निखिल भव जीवन !

शशि मंगल लोकों को छूते आज कल्पना के पर,
शशि दे जन को स्वप्न, भौम मन में साहस बल दे भर !
शशिप्रभ स्वप्नों से मंगलमय स्वर्ग रचें हम सुंदर,
मानव जीवन में अवतरित पुनः हो मानव ईश्वर !

× × × ×

मृत्युहीन रे यह पुकार मानव आत्मा की निश्चय,
सत्य ज्योति अमरत्व ओर वह बढ़े अनागस निर्भय !
वैदिक ऋषि के अमृत निण्य वचनों की जग में हो जय,
ये उपनिषत्, समीप बैठ रे, ग्रहण करें हम आशय !

अंधं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ।।
विद्यांचाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।।

अंध तमस में गिरते वे जो मात्र अविद्या में रत,
उससे भूरि तमस में वे जो विद्या में रत संतत ।
विद्या ऽ विद्या उभय एक में, भेद जिन्हें यह अवगत,
विद्यामृत पी, मृत्यु अविद्या से वे तरते अविरत !

ब्रह्मज्ञान रे विद्या, भूतों का एकत्व, समन्वय,
भौतिक ज्ञान अविद्या, बहुमुख एक सत्य का परिचय।
आज जगत में उभय रूप तम में गिरने वाले जन,
ज्योति केतु ऋषि दृष्टि करे उन दोनों का संचालन!
वहिरंतर की सत्यों का जग जीवन में कर परिणय,
ऐहिक आत्मिक वैभव से जन मंगल हो निःसंशय!

× × × ×

रजत अनिल में रश्मि तूलि से सत जल चित्रित
जीवन ऐश्वर्यों के सम्मोहन से रंजित
देखो, इन्द्रधनुष से स्वर्ग धरा आलिंगित,
विजय ध्वजा मानव भावी की, तम पर अंकित!

चिन्तन

दुख में मन करता ज्यों चिन्तन,
सुख में जीवन दर्शन!

आज प्रौढ़ जीवन संध्यातप,
सागर की लहरों में छप् छप्
यौवन स्मृतियाँ उठतीं कँप कँप!
गर्जन करते घुमड़ घुमड़ घन,
त्रस्त क्षितिज पर, विद्युत् द्युति से
चकित दृष्टि जाती है झँप झँप!

जो प्रकाश का प्रांगण था मन
वह छाया का आँगन!

क्या यह सामाजिक संघर्षण
केवल रे मानव का जीवन?
सुंदरता आनंद प्रेम के स्वप्न चिरंतन
क्या केवल प्रभात के उड़गण?
रिक्त शरद घन?

क्या यह उचित
कि यह सामाजिक साधारणता
मूल्य व्यक्ति का करे नियंत्रित?
जंगम जीवन ज्वर की जड़ता
करे मनुज आत्मा मर्यादित?

मानव जीवन नहीं उदधि सा
केवल कर्म फेन कल्लोलित,
लहरों की गति क्षण लहरों पर
उठ गिर होती अवसित !

मानव जीवन नहीं अकूल
अतलता ही में सीमित,
वहाँ बूँद का मान उदधि से
कही अधिक है निश्चित !

विन्दु सिन्धु ? बूँदों का वारिधि
बूँदों पर अवलंबित,
व्यक्ति समाज ? व्यक्ति में रहता
अखिल उदधि अंतर्हित !

सागर की असीमता जड़ है,
जन समाज की जीवित,
सृजन शक्ति का दूत व्यक्ति
करता समाज को विकसित !

आज अभाव शक्तियाँ जग में
काँटे वोती हैं पग पग में,
सामाजिक समता का कटु विष
दौड़ रहा जन की रग रग में !

आज भाव की सृजन शक्तियाँ
उतर नहीं पाती हैं भू पर,

जो अंतर्चेतना व्योम में
उमड़ रहीं देने जीवन वर !

आज चतुर्दिक् घृणा द्वेष
स्पर्धा से जग जीवन परितापित,
आज एकता के मंदिर में
अहम्मन्य जड़ समता स्थापित !

आज प्रतीति न प्रीति हृदय में
औ' उल्लास न आशा,
प्रतिहिंसा तृष्णा संशय भय
नयनों की शर भाषा !

आत्मा में सौन्दर्य नहीं निज,
मानव गरिमा मुख पर,
सृजन प्राण चेतना वाष्प सी
उड़ उड़ जाती ऊपर !

कब विश्वास प्रेम आशा
पुरुषार्थ उच्च अभिलाषा,
कला सृष्टि, सौन्दर्य दृष्टि
होगी जीवन परिभाषा !

आज जब कि जीवन संध्यातप,
स्वर्ण चूड़ लहरों में छप् छप्
स्वप्नाकांक्षा उठती कँप कँप !
उदय हो रहा ज्योति नीड़ घन,

दिव्य क्षितिज पर तड़ित जागरण ,
मुग्ध नयन जाते हैं झँप झँप !
छायाक्रांत–शांत मेरा मन ,
पुनः जगमगा उठा चिरंतन !

मत्स्य गंधाएँ

स्वर्ण पंख सांध्य प्रहर,
ज्योति तरंगित सागर
मान चित्र सा सुंदर!

लहरों से लिपट लहर
लोट रहीं लहरों पर,
स्नायु हर्ष रहा सिहर!

पुलिन स्वप्न वेश्म जड़ित
ताल हस्ततल वीजित
यक्ष लोक सा चित्रित!

वाष्प ग्रथित मेघ सुभग
द्वाभा पंखों में रँग,
उड़ते ज्यों तूल विहग!

सौ सौ ये लोल लहर
परियों के रत्न-विवर
सौधों की स्वर्ण शिखर!

तट पर मैं रहा विचर
ये परियाँ, सतरँग पर,
कहतीं आकर बाहर,—

'हम जीवन धात्री वर!'
सुनता मैं फेन मुखर
विगलित मोती के स्वर!

'जीवन के अणु उर्वर
पाल पोस पृथ्वी पर
लाईं हम, भू नभचर !'

'ज्योति प्रीति प्राण सुघर
सिन्धु प्रजा, जन-सुखकर
रचे धरा स्वर्ग अमर,—
'देख रहीं उठ उठ कर
हम भूतट छू दुस्तर
मा की ममता से भर !'

अरुण ज्वाल

(नव चेतना)

ओ अरुण ज्वाल, चिर तरुण ज्वाल !

चेतना रुधिर लौ सी कंपित ,
जीवन जावक से पद रंजित ,
ऊषा पावक से खिला क्षितिज
दीपित करती तुम स्वर्ग भाल !

मेघों में भर स्वर्णिम मरंद ,
रँग रश्मि तूलि से रज अमंद ,
जग की डाली डाली में तुम
सुलगाती नव जीवन प्रवाल !

तुम रक्त सुरा सी सुर मादन ,
जड़ तुमको पी बनते चेतन ,
गुंजरित भृंग, कूजित कोकिल ,
मद से मंजरित कनक रसाल !

स्वर्णोदय सी अंतर्मन में
मदिराभा भरती तुम क्षण में ,
नीरव रहस्य के शिखरों पर
बुन श्री सुषमा सुख स्वप्न जाल !

नभ अनिल सलिल रे आज लाल ,
प्रज्वलित अवनि औ' देश काल ,
तुम डुबा रही भव सिन्धु पुलिन
आलोक ज्वार सी उठ विशाल !

स्वर्ण निर्झर

(सौन्दर्य चेतना)

स्वर्ण रजत के पत्रों की रत्नच्छाया में सुंदर
रजत घंटियों सा सुवर्ण किरणों का झरता निर्झर!
सिहर इंद्रधनुषी लहरों में इंद्रनीलिमा का सर
गलित मोतियों के पीतोज्वल फेनों से जाता भर!
वहाँ सूक्ष्म छायाभा के तन पैर अमृत में मादन
वर्ण विभा से भरी अंगभंगी से हर लेते मन!
वह सौन्दर्य चेतना का नीहार लोक चिर मोहन
सहज स्फुरित हो उठता नीरव अंतस्तल में गोपन!

ऊषा की लाली से कल्पित नव वसंत के कोंपल,
सौरभ वाष्पों पर पुष्पों के शत रँग खिलते प्रतिपल!
शशि किरणों के नभ के नीचे, उर के सुख से चंचल,
तुहिनों का छाया वन नित कँपता रहता तारोज्वल!
वहाँ एक अप्सरी, स्वर्ण चंद्रातप से तन निर्मित
नवल अवयवों की जलतल की जाल व्रतति सी शोभित!
उसकी फूल देह को घेरे स्वर्ग लालसा गुंजित,
कोमल एकाकी अंगों पर नव लावण्य अनावृत!

सुप्त स्वर्ण चक्रांगों से सुकुमार उरोजों पर स्थित
शुभ्र सुधा के मेघों की जाली उठती गिरती नित!
उठे कामना शिखरों से, स्वर्गिक श्वासों से स्पंदित,
उन दो रजत प्रीति कलशों पर स्वर्ण शिराएं वेष्टित!

ज्योति भँवर सी सुघर नाभि प्रिय रजत फुहार उदर में
स्वर्ण वाष्प का घन लटका जघनों के माणिक सर में !
रजत शांति आत्मा के नभ की, झंकृत उसके स्वर में
मुक्ता घट में स्वर्ण प्रीति की सुरा लिए वह कर में !

मृदुल कामना लतिकाओं सी बाँहें प्रीति प्रलंबित
आलिंगन भरने को अति कोमल पुलकों से कल्पित !
रक्त सुरा प्यालों से करतल, प्रणय रुधिर से रंजित,
दीप शिखाओं सी अंगुलियों पर हीरक नख ज्योतित !
भौंरों की गुंजारों से श्लथ कुंतल मसृण तरंगित,
जिनके कोमल सुरभित तम में स्वप्न काम के निद्रित !
वाणी के उद्ग्रीव हंस सी ग्रीवा की शोभा सित,
भाल भृकुटि नासा श्रवण चिबुक उसके सतत निरुपमित !

स्वर्णिम निर्झर सी रति सुख की जंघाओं पर पेशल,
लिपटी जीवन की ज्वाला निज दीपन करती शीतल !
नव प्रभात किरणों से चुम्बित रक्तोत्पल से पदतल,
लहरा उठती पग पग पर स्वर्गंगा भू पर चंचल !
खिले कपोलों में गुलाब सुषमा के, छवि से लज्जित,
अधरों पर प्रवाल की मदिरा बनी मधुर अधरामृत !
इंदु रश्मि के कुंद मुकुल ज्यों विगलित, दशनों में स्मित,
नील कमल नयनों में नीरव स्वर्ग प्रीति का विकसित !

बहता स्निग्ध स्पर्श प्राणों में अमर चेतना सा नव,
उर को होता चिर प्रतीति की मधुर मुक्ति का अनुभव !

भर जाता मन में स्वर्गिक भावों का स्वर्णिम वैभव,
हृदय हृदय का मिल, अभिन्न बनना हो जाता संभव !

यह सौन्दर्य चेतना उसके अमर प्रेम की छाया,
दिव्य प्रेम देही, सुंदरता उसकी सतरँग काया !
प्रेम सत्य, शिव सार, प्रेम में रे आनंद समाया,
दृढ़ प्रतीति को उसने अपनी चिर पद पीठ बनाया !

ज्योति भारत

ज्योति भूमि,
जय भारत देश !
ज्योति चरण धर जहाँ सभ्यता
उतरी तेजोन्मेष !

समाधिस्थ सौन्दर्य हिमालय,
श्वेत शांति आत्मानुभूति लय,
गंगा यमुना जल ज्योतिर्मय
हँसता जहाँ अशेष !

फूटे जहाँ ज्योति के निर्झर
ज्ञान भक्ति गीता वंशी स्वर,
पूर्ण काम जिस चेतन रज पर
लोटे हँस लोकेश !

रक्तस्नात मूर्छित धरती पर
बरसा अमृत ज्योति स्वर्णिम कर,
दिव्य चेतना का प्लावन भर
दो जग को आदेश !

नोआखाली के महात्मा जी के प्रति

कौन खड़े उन्नत अविचल, दुर्धर झंझा के सन्मुख ?
स्वर्ग दूत से, जाति भेद का हरने धरणी का दुख !
देह मात्र से मानव तुम, बल में अदम्य तुम भूधर,
ऊर्ध्व चरण धर चलते निश्चल, भू से स्वर्ग क्षितिज पर !
कोने कोने में प्रकाश से व्यापक, ऋजु गामी नित,
देवों का पावक कर-पुट भर भू पर करते वितरित !
आज राम कोदंड तुम्हारे कर में नव संधानित
दीप्त अहिंसा तीरों से करता भू तमस पराजित !
यह संस्कृति का शस्त्र क्षेत्र में राजनीति के रोपित
भावी मानव जीवन गौरव उर में करता जागृत !

युग के धार्मिक नैतिक आर्थिक संघर्षों से कुंठित
मानवता में तुमने फिर नव हृदय कर दिया स्पंदित !
इस वसुधा पर जिस सुवर्ण युग का यह अभिनव उपक्रम
उसका पा आभास, देव, झुक जाता शीष ससंभ्रम !

पंडित जवाहर लाल नेहरू जी के प्रति

जय निनाद करते जन, हे जनगण के नायक ;
इस विशालतम जन समुद्र के भाग्य विधायक !

ज्योति रत्न तुम भारत के, हृदयोज्वल, चेतन ;
प्राणों की स्मित रंग श्री से वहुमुख शोभन !
फूलों के वाणों का रच नव कुसुमित तोरण
अभिनंदन करता नव भारत का नव यौवन !
उर के चिर तारुण्य, पाँति में युवति युवक गण
खड़े प्रीति सौन्दर्य द्वार वन अपलक लोचन !
जननि तुम्हारा मुख शिशुओं में करतीं चुम्बन,
मानव होंगे वे किसके आदर्श कर ग्रहण ?

उन्नत आज हिमाद्रि, उठाए नभ में मस्तक,
वह शाश्वत भारत प्रहरी, तुम गौरव रक्षक !
सिन्धु तरंगित हर्ष स्फीत करता जय गर्जन ;
निखिल धरा में करने को संदेश ज्यों वहन !

शत अभिवादन करता मन, भारत के नायक,
तन के मन के भूखों के नव भाग्य विधायक !

कोटि हस्त पद करो लोक गण का संचालन,
ज्योतित हों तम के मन, शोभित नग्न क्षुधित तन !
निर्मित करो पुनः भारत का वैभव जीवन,
आर्य भूमि पर उठे सांस्कृतिक स्वर्गारोहण !

वसुधामयी भरत भू : मानवता-प्रेमी जन,
आत्मवान्, ऋषियों के तप से अंतर्मुख मन;
खुलें तुम्हारे हाथों युग युग के जड़ बंधन,
ज्योति ज्वार सा जगे सुप्त भू का उपचेतन!
हो भारत स्वातंत्र्य विश्व हित स्वर्ण जागरण,
रक्त व्यथित भू पिए शांति सुख का संजीवन!
लौह अस्थि पंजर में यांत्रिक युग के भीषण
मनुष्यत्व का हृदय कर उठे फिर से स्पंदन!

ऊर्ध्व दंड तुम बनो, इन्द्रधनु सी, सुर मोहन,
भारत की चेतना ध्वजा फहरे दिक् शोभन;
जीवन स्वप्न रंग स्मित, अंतर्रश्मि प्रज्वलित,
प्रीति शिखा सी, विश्व व्योम कर ज्योति तरंगित!

अगुंठिता

वह कैसी थी,
अब न बता पाऊँगा
वह जैसी थी !

प्रथम प्रणय की आँखों ने था उसको देखा,
यौवन उदय,
प्रणय की थी वह प्रथम सुनहली रेखा !

ऊषा का अवगुंठन पहने,
क्या जाने खग पिक से कहने,
मौन मुकुल सी, मृदु अंगों में
मधुऋतु बंदी कर लाई थी !
स्वप्नों का सौन्दर्य, कल्पना का माधुर्य
हृदय मे भर, आई थी !

वह कैसी थी,
वह न कथा गाऊँगा
वह जैसी थी !

'क्या है प्रणय ?' एक दिन बोली, 'उसका व
इस समाज में ? देह मोह
है द्रोह का त्रास जहाँ

'देह नहीं है परिधि प्रणय
प्रणय दिव्य है, मुक्ति हृदय

यह अनहोनी रीति,
देह वेदी हो प्राणों के परिणय की !

'बँधकर हृदय मुक्त होते हैं,
बँधकर देह यातना सहती,
नारी के प्राणों में ममता
बहती रहती, बहती रहती !

'नारी का तन मा का तन है,
जाति वृद्धि के लिए विनिर्मित,
पुरुष प्रणय अधिकार प्रणय है,
सुख विलास के हित उत्कंठित !

'तुम हो स्वप्न लोक के वासी,
तुमको केवल प्रेम चाहिए,
प्रेम तुम्हें देती : मैं अबला,
मुझको घर की क्षेम चाहिए !

हृदय तुम्हें देती हूँ, प्रियतम,
देह नहीं दे सकती,
जिसे देह दूँगी अब निश्चित
स्नेह नहीं दे सकती !

'अतः विदा दो मन के साथी,
तुम नभ के, मैं भू की वासी,
नारी तन है, तन है, तन है,
हे मन प्राणों के अभिलाषी !

'नारी देह शिखा है जो
नव देहों के नव दीप सँजोती,
जीवन कैसे देही होता
जो नारीमय देह न होती ?

'तुम हो स्वप्नों के द्रष्टा, तुम
प्रेम ज्ञान औ' सत्य प्रकाशी,
नारी है सौन्दर्य, प्राण,
नारी है रूप सृजन की प्यासी !

'तुम जग की सोचो, मैं घर की,
तुम अपने प्रभु, मैं निज दासी,
लज्जा पर न तुम्हें आती,
बन सकते नहीं प्रेम संन्यासी !'

'विदा !' 'विदा !'
'शायद मिल जाएँ यदा कदा !'

मैं बोला, 'तुम जाओ,
प्रसन्न मन जाओ, मेरा आशी ;'
उसके नयनों में आँसू थे,
अधरों पर निश्छल हाँसी !

वह क्या समझ सकी थी, उस पर
क्यों रीझा था यह आत्मातुर
स्वप्न लोक का वासी ?

मैं मौन रहा,
फिर स्वत: कहा,
'बहती जाओ, बहती जाओ,
बहती जीवन धारा में,
शायद कभी लौट आओ तुम,
प्राण, बन सका अगर सर्वहारा मैं !'

चिन्मयी

वह हिमाद्रि की मुक्त तापसी
मेरी चिर सहचरी, मानसी !

शुभ्र हिमानी का तन अंचल,
आते जाते शत रँग पल पल,
निश्चल अंतर, चितवन चंचल,
झरते अश्रु, अजस्र स्थिर हँसी !

स्वच्छ कुंद की कलियों का तन,
सुरभि-रहित-सौरभ का शुचि मन,
ज्योत्स्ना में गुंठित शशि आनन,
अवनि, अनिल, आकाश में बसी !

सहज चेतना की प्रकाश वह,
एक किरण, सतरँग विलास वह,
विश्व अभ्र पर इन्द्रहास वह,
पृथ्वी के तृण तृण पर विलसी !

मौन कल्पना के उर में पर
स्वर्गिक शोभा की उड़ान भर,
फिर फिर आती हृदय में उतर
मानस हंसिनी वह, उर सरसी !

मधु गाती गुण, भर पिक कूजन,
शरद पद्म सित करती अर्पण,
हिम उसकी स्मिति करती वर्षण,
वर्षा भरती मंगल कलसी !

वह हिमाद्रि की मुक्त तापसी !
मेरी चिर प्रेयसी, मानसी !

हिमाद्रि और समुद्र

वह शिखर शिखर पर स्वर्गोन्नत ,
स्तर पर स्तर ज्यों अंतर्विकास
वह सूक्ष्म सूक्ष्मतम चिद् नभ में
करता हो शुचि शाश्वत विलास !
वह मौन गभीर प्रशांत ऊर्ध्व
स्थित थी असंग चिर निरभिलाष
आत्मा की गरिमा का भू पर
बरसाता हो अकलुष प्रकाश !

वह निर्विकल्प चेतना शृंग
उठ स्वर्ग क्षितिज से भी ऊपर
अन्तर्गौरव में समाधिस्थ
अपनी ही सत्ता पर निर्भर !
वह ज्यों असीम सौन्दर्य अमर
जो तृण तृण पर से रहा निखर ,
वह रोमांचित आनंद, नृत्य करता
विमुग्ध भव जिस लय पर !

यह ज्यों , अनंत जीवन वारिधि
लहर लहर अशांत औ' उद्वेलि
जिसके निस्तल गहरे रँग
अगणित भव के युग अंतर्हि

जग की अबाध आकांक्षा से
इसका अंतस्तल आंदोलित,
सुख दुख आशा आशंका के
उत्थान पतन से चिर मंथित!

यह मनश्चेतना ज्यों सक्रिय
भू के चरणों पर बिखर बिखर
शत स्नेहोच्छ्वसित तरंगों की
बाँहों में लेती भू को भर!
नभ से बन पवन, पवन से जल,
शलायित यह चेतना अमर
सोई धरती से लिपट, जगाने
उसे, युगों की जड़ता हर!

यह महाकाल सा रे अलंघ्य,
जो शाश्वत स्वर्ग मर्त्य प्रहरी,
यह महादिशा सा ही अकूल
जिसमें विराट् संसृति लहरी!
हिमगिरि की गहराई ऊँची,
सागर की ऊँचाई गहरी
छाया प्रकाश की संसृति के
जीवन रहस्य में है छहरी!

भू प्रेमी

चाँद हँस रहा निविड़ गगन में, उमड़ रहा नीचे सागर
इन्द्रनील जल लहरों पर मोती की ज्योत्स्ना रही बिखर !
महानील से कहीं सघन मरकत का यह जल तत्व गहन
जिसमें जीवन ने जीवों का किया प्रथम आश्चर्य सृजन !

जल से भी कठोर धरती का लेकर धीरे अवलंबन
जलज जीव ने सजग बढ़ाए क्रम विकास के अथक चरण
भू के गहरे अंधकार में वही जीव अनिमेष नयन
देख रहा नभ ओर ज्योति के लिए, जहाँ रवि शशि उड़गण

धरती के पुलिनों में उसकी आकांक्षाएँ उद्वेलित
फिर फिर उठतीं गिरतीं ऊपर के प्रकाश से आंदोलित
अच्छा हो, भू पर ही विचरे यह भू का प्रेमी मानव
मधुर स्वर्ग आकर्षण से नित होता रहे तरंगित भव

विस्तृत जो हो जाए मानव अंतर, चेतनता विकसित
आत्मा के स्पर्शों से भू रज सहज हो उठेगी जीवित
अंतर का रूपांतर हो औ' बाह्य विश्व का रूपांतर
नव चेतना विकास धरा को स्वर्ग बना दे चिर सुंदर

जन मन के विकास पर निर्भर सामाजिक जीवन निश्चित
संस्कृति का भू स्वर्ग अमर आत्मिक विकास पर अवलंबित

पूषण

मैं पूषण हूँ, धरती का ज्योतिर्मय ईश्वर,
स्वर्ण रजत का चिर प्रकाश बरसाता भू पर!
जब धरती सोती तमिस्र का दे अवगुंठन;
मैं सुधांशु बन भरता दिव स्वप्नों से जन मन!

मेरे ही असंख्य लोचन अपलक तारक गण,
अंधकार को प्रहसित करते, भू भय छेदन!
मेरी किरणों से झरता धरती पर जीवन
प्राणों से तृण तरु जीवों का करता पोषण!

मेरा यह संदेश: उठो हे, जागो, भूचर,
तुम हो मेरे अंश, ज्योति संतान तुम अमर!
छोड़ो जड़ता, छिन्न करो भव भेदों का तम,
तुम हो मुझसे एक, एक तुम भूतों से, सम!
करो आत्मबल संचय, तोड़ो मन के बंधन,
स्वर्ग बनाओ वसुधा को, भुज श्रम से शोभन!
अंधकार से लड़ो, यही मनुजोचित जीवन,
देवों के हों मुकुट तुम्हारे श्रम मुक्ता कण!

एक मंत्र से हो सकती मानवता निर्मित,
पूषण में संयुक्त रहें जो मानव निश्चित!
आत्म ऐक्य हो नींव, मनुष्य समाज का भवन
स्वर्गोन्नत हो, मुक्त व्यक्ति रुचि के वातायन!

जिज्ञासा

यह ओसों की डाल पिरो दी किसने जीवन के आँगन में ?
हास अश्रु की सजल ज्वाल यह किसने फैला दी दिशि क्षण में !
ताराओं से पुता हुआ नीरव अनंत चिर अवनत ऊपर ,
कौन गहन के अवगुंठन से झाँक रहा वह हँस हँस भू पर ?

इस धरती के उर में है उस शशि मुख का असीम सम्मोहन ,
रोक नहीं पाते भू के तट जीवन वारिधि का उद्वेलन !
किस अदम्य आकांक्षा से अंतरतम जग का रे आन्दोलित ,
किसकी गति मे भ्रमित महा नीलिमा बन गई कैसे ज्योतित !

यह अगाध निस्तल रहस्य किसका अकूल में व्याप्त नील घन ,
तड़क रही जिसमें विद्युत सी विश्व कामना भर गुरु गर्जन !
क्यों प्राणों से हरित धरित्री, किस सुख से जीवन अणु स्पंदित ?
किसकी शुभ्र किरण यह सहसा सतरँग इन्द्र धनुष में चित्रित !

लौट लौट आते तट छूकर वाद विवाद शास्त्र षड् दर्शन ,
सतत डूबते उतराते सुख दुख इच्छाएं जन्म औ' मरण !
श्याम, विश्व घनश्याम, गहन घनश्याम रहस्य अनंत चिरंतन ,
चिर अनादि अज्ञेय, पार जा पाते नहीं चक्षु वाणी मन !

स्वर्णिम पराग

(मन)

स्वर्णिम पराग, स्वर्णिम पराग !
यह उड़ता सुमनों से मन के
जीवन का स्वर्ण हास्य वन के,
छा जाता भू नभ पर छन के
रँग रँग भावों का मधुर राग !
पीली लौ सी अलकें कुंचित,
करतीं तन प्राणों को पुलकित,
सौरभ से अग जग समुच्छ्वसित,
इसके रोओं में भरी आग !

यह रे हिरण्य का अवगुंठन
चेतना ढँके जिससे आनन,
दिशि दिशि में इसकी स्वर्ण किरण
बरसातीं श्री सुषमा सुहाग !
यह स्वर्ग- प्रीति-मधु से गर्भित,
चिर मर्म कामना से सुरभित,
प्राणों के चल सुख से गुंजित,
मद को पी गाते जन विहाग !

भीतर वाहर इससे रंजित,
इसकी रज से जीवन निर्मित,
कुंकुम के स्पर्शों से मोहित
खेलते चराचर प्रणय फाग!

ऊषा

(मनः स्वर्ग)

(१)

लो, वह आई विश्वोदय पर
स्वर्ण कलश वक्षोजों पर धर !
अर्ध विवृत कर ज्योति द्वार पट ,
ज्वलित रश्मियों की अंजलि भर !

वह पवित्रता सी अभिषेकित ,
सद्यः स्फुट शोभा में आवृत ,
आई अरुणोदय मंदिर में
पथ प्रकाश का करने विस्तृत !

आनन में लावण्य अगुठित ,
प्रीति दृष्टि आलोक से स्तिमित ,
दिव्य चेतना की ऊषा वह
अधर पल्लवों में प्रभात स्मित !

ज्योति नीड़ के विहग जगे, गाते नव जीवन मंगल ,
रजत घंटियाँ बजीं अनिल में, ताली देते तरुदल !
चूम विकच नलिनी उर, गूँजे गीत पंख मधुकर दल ,
नृत्य तरंगित बहे स्रोत, ज्यों मुखरित भू पग पायल !
विहँसे हिमकण किरण गर्भ, स्वर्गिक जीवन के से क्षण ,
खोल तृणों के पुलक पंख उड़ने को भू रज के कण !
वसुधा के उरोज शिखरों से खिसका चल मलयांचल ,
सरिता की जाँघों से सरका लहरा रेशम सा जल !

स्वर्ग विभा धरती को छू हो उठी सुगंधि ,
ज्योति तमस मिल हुए विश्व द्वाभा में विकसित !
शुभ्र चेतना हँसी हृदय के रागों में स्मित ,
जीवन के वैभव से हुई धरा रज कुसुमित !

रंग चपल पुष्प हास पंख खोल भूमि कंत
भृंग गुंजरित, पिकी रटित जगा नवल वसंत !
नव प्रवाल प्रज्वलित श्वसित रजत हरित दिगंत ,
गीत गंध मधु मरंद हिम ग्रथित समीर मंद !
अमंद रहस गीत नृत्य नाद से दिशा ध्वनित ,
अनंत नीलिमा सृजन तरंग भंगिमा गलित !
अबाध कामना मथित समुद्र वारि उच्छ्वसित ,
अलंघ्य शैल शृंग मौन चित्र शांति में जड़ित !

कुंजों के कंपित भूतल पर
ढँक रजत हरित जाली से तन
छाया की बाँहों में आतप
अँगड़ाता स्वप्नों से उन्मन !
श्लथ कर कंचुक की पंखड़ियाँ
कलियों के नव उर कर विकसित ,
फूलों पर कँपता मलयानिल
स्वर्णिम मरंद रज से सुरभित !
लहरों से लिपट रहीं लहरें
तरुओं से लतिकाएं कोमल ,

भूरज पर लोट रहीं किरणें
तरुदल को चूम रहे तरुदल !

स्वर्ण रजत की धूलि से भरा निखिल दिगंतर,
मनश्चेतना चूर्ण उड़ रहा हो ज्यों भास्वर !
दिव्य उषा के मनोहास्य से दिशि आलोकित,
सूक्ष्म सृष्टि नीहार सृजन सुख से आंदोलित !

नव प्रवाल लाली में गुंठित
छुईमुई सी लज्जा कोमल,
मसृण जलद में शशि छाया सी
आ-जा, दिखती छिपती प्रतिपल !
अधरों पर भरती मृदु मर्मर,
कँपते गालों में स्वर्णिम सर;
स्वर्ग विभा रज तन को छूकर
खिलती सकुचाती क्षण क्षण पर !

व्रीड़ा दौड़ी भू पर आ ऊषा के मुख पर
प्रणय रुधिर से हृदय शिराएं काँपीं थर् थर् !
अधर पल्लवों में जागा मधु स्वर्णिम मर्मर,
मौन मुकुल मुख खिला लालिमा से रँग सुंदर !
क्या था गिरि कुंजों में, सरित तटों में गोपन
मर्म मधुर लज्जा में लिपटी जो अमर किरण !
सलज किसलयों का धर आनन पर अवगुंठन
स्वर्ग चेतना बनी लाज मदिरा पी मोहन !

नवल उरोज सरोज हुए सरसी के दोलित,
लहरों का आँचल दे वह तन करती आवृत;
अमित कामना स्पंदित षट्पद शत स्वर गुंजित
उड़ते, ईषत् नव कलियों का मुख कर चुंबित!

रत्नच्छाया में ज्यों परिवृत
आई सज्जा चरण धर रणित,
मणि मुक्ताओं के कर इंगित
स्वर्ण रजत सुषमा में झंकृत!
पुष्प पँखड़ियों के शत रँग पर,
तुहिन तरल नख, नव पल्लव कर,
धरती पग कुछ नभ कुछ भू पर
इन्द्र धनुष प्रति रजकण में भर!

किया तापसी को खिल नव कलियों ने सज्जित,
मधुऋतु के रंगों की चोली से कर वेष्टित!
लिपटी लता पदों मे चल अलियों से गुंजित,
स्वर्ण मंजरित कटि कांची झनकी पिक कूजित!

मल्लिका बनी हृदय का हार
स्वर्ण गेंदा श्रुति भूषण स्फार;
कचों में गुँथे बकुल सुकुमार
हँसे कंकण बन हरसिंगार!
यूथिका बनी वलय कोमल
कुमुद वक्षोजों बीच तरल!

शीष का फूल शिरीष नवल,
पदों पर खिल वंजुल पायल !

(२)

सरसि से लहरे चंचल प्राण,
खिला सरसिज सा जीवन-सार;
हृदय के शत-दल खुले अजान
भाव सुषमा से रँग सुकुमार !
सलिल पर ज्यों पंकज के पत्र
चेतना पर जीवन का भार
लगा तिरने, स्वप्नों का छत्र
पद्म सा जगा मनस साकार !
मर्म में अमृत प्रीति मधुकोष,
दलों में ध्वनित स्पृहा गुंजार;
स्वयं ज्यों जीवन का परितोष
बना शोभा विकास विस्तार !

अमर चरण रँग हृदय राग से, मरण शील वन,
परम अहम्, चेतना वृद्धि बन, तपस से सृजन
करने लगे मनो जीवन का स्वप्नों से घन,
आत्मा का ऐश्वर्य बाँध भावों में मोहन !
तुहिन कणों का मुकुट पहन आनंद बना सुख,
चटुल लहरियों पर चल, किरणों से ढँक स्मित मुख !
स्रोतों में मोती, तरुदल में कांचन मर्मर
रजत अँगुलियों में समीर के पुलक स्पर्श भर !

हृदय शिराएं झंकृत, पलक निमिष से चंचल,
उतरा वह भू पर पकड़े शोभा का अंचल!
रोओं में विद्युत्, श्वासों में विस्मृति मादन,
मदिर प्रीति की स्वर्ण सुरा का पी संजीवन!

गात्र कनक चंपक ज्योत्स्ना का, केसर पुलकित,
उर के रजत हंस नव इन्द्र जलद से संवृत;
शोभा थी स्वप्नों की कोमलता से कल्पित,
स्वर्ण किंकिणी स्मिति प्रवाल अधरों पर झंकृत!
सीप छटा सा उदर, नाभि मुक्ताफल सी स्मित,
पुष्प पुलिन जघनों पर चिर लालसा तरंगित;
वह लावण्य व्रतति थी कटि तनिमा से दोलित,
प्रीति पाश बाँहें पुलकों से स्पर्श-प्रलंबित!

उसे देख, वसुधा के स्वप्नों का जग अपलक
रँग रँग की पंखड़ियों में खिल उठा अचानक!
रंगों का हँस उठा इन्द्र सम्मोहन व्यापक,
गूंज उठी, कल कूक उठी कामना जग अथक!

मधुलिह् चुंबि शिरीष वेणि, लेखा शशि आनन,
सुरभि वाष्प के वसन, हिमानी धौत कुसुम तन,
आई प्रीति, पकड़ प्रतीति का रश्मि-स्पर्श कर,
उर स्पंदन से दोलित, आशा के खोले पर!
स्वप्नों का पट बुन उसने, उर रागों से रँग,
जन्म मरण, सुख दुख, विरह मिलन बाँधे सँग सँग!
उदधि उच्छ्वसित, पृथ्वी पुलकित, अपलक उड़गण,
औ' अवाक् गिरि, किया सभी ने आत्म समर्पण!

प्राणों के स्वप्नालिंगन में बँध वसुधा पर
सृजन-प्राण बन गए स्वयं को भूल चराचर !
रक्त सुरा, संगीत बना उर उर का स्पंदन,
पुलकों में पल्लवित हँस उठे जड़ औ' चेतन !

तुहिन वाष्प के सुरँग जलद से छादित
इन्दु रश्मि के इन्द्रजाल से स्पर्शित,
अर्ध विकच कलिका के उर में जृंभित
स्वप्न दिखाई दिया रहस सुख से स्मित !
स्वर्णिम केसर की अलकें थीं सुरभित,
अर्ध खुले लोचन रहस्य से विस्मित;
ऊर्मिल सरसी सा उर शशि कर गुंफित,
इन्द्र धनुष छाया पट से तन आवृत !

सृजन प्ररोह हृदय में था चिर गोपन,
मुग्ध कल्पना सँग कर उसने प्रजनन
भरा धरा में अतुल मनोमय जीवन,
उर उर में मधु आकांक्षा का गुंजन !

हिम कुन्देन्दु समान कल्पना शोभित
सित सरसिज पर लेटी शशि कर सी स्मित;
धूप छाँह रँग तिर अंचल में अगणित
करते थे मानस को रंग तरंगित !
प्राणों की झंकृत तंत्री कर में धर
बरसाती उर में रागों के मधु स्वर;

सुघर इंगितों से शोभा पड़ती झर
मर्म मधुर नीरव स्मिति से रस निर्झर !

आई आशा, शशि की रजत तरी पर चढ़ कर,
स्वर्ण हास्य से आलोकित कर मेघों का घर !
गीत स्वप्न से ग्रथित मनोजव के खोले पर,
चपल तड़ित भ्रू भंगों से पुलकित कर अंतर !
रजत पल्लवों की ज्वाला से वेष्टित प्रिय तन,
उदधि ज्वार पर चढ़ फेनों पर करती नर्तन !
चिर अधखुले उरोजों पर जलते थे उड़गण,
रजस्राव के अभ्रक से ज्योतित भू रज कण !

शरद चंद्रिका स्नात मल्लिका सी नव निर्मल
हिम वाष्पों का झीना पट पहने किरणोज्वल,
शैशव की स्मिति सी प्रतीति आई चिर निश्छल,
भर अनभ्र नीलिमा मौन नयनों में निस्तल !
इन्दु रश्मि घट में ला स्वर्ग सुधा हिम जल स्मित
पावन उसने किए हृदय भेदों से पीड़ित;
दशनों की आभा स्मिति से अंतर कर विगलित,
प्राण किए कोमल मृणाल के तंतु में ग्रथित !

लहरों के पुलिनों से अचपल
जागे धैर्य शौर्य उर संबल,
हिम शिखरों से उन्नत अविचल
अंतर पौरुष से अरुणोज्वल !

रजत स्वर्ण ज्वालों के सुंदर
कर में धरे त्रिशूल अभयकर,
झंझा लहरों के तुरगों पर
आए वे तम भ्रम के जित्वर!
नभ से नीरव निस्तल लोचन,
धरती सा था धीरज का मन;
शौर्य सपंख अद्रि सा शोभन,
छू न सका था जिसे वृत्रहन्!
आत्म त्याग,——तप से दीपित तन,
मृत्यु कंठ, आपद् आभूपण,
प्रकट हुआ, आक्षितिज थे नयन,
ममता घन से शून्य उर गगन!
सेवापगा विरति शशि मस्तक
उर में थी विनम्रता की स्रक्,
शांत गहन निशि नभ सा अपलक,
अथक कर्म रत, भव से अपृथक्!

सेवा उतरी, ज्यों गंगा जल,
कलुप तृषित लहरों से चंचल;
तन पर वीतराग संध्यांचल,
नत मुख पर श्रमकण मुक्ताफल!
स्तिमित दृष्टि थी, अधर सहज स्मित,
सेवा का वक्षस्थल विस्तृत!
ध्रुव तारा से पथ चिर ज्योतित,
काँटों को करती थी कुसुमित!

सँग कृतज्ञता थी, सजल नयन,
आकुल अंतर, मूक थे वयन;
सुघर कुँई सी स्वप्निल चितवन
लिपट व्रतति सी जाती तत्क्षण !

विनत मुकुल सा सुहृद था विनय;
ग्रहण शील, चिर निरलस, निर्भय !
वह स्वभाव ही से था सहृदय,
निज अंतर्वैभव में तन्मय !
इन्दु विभा ज्यों जलदों से छन
बेला बन में लगती मोहन,
मौन मधुर गरिमा से शोभन
बना शील संस्कृत जग जीवन !

जुगनुओं के ज्योति मंडल से घिरा मुख शांत
तारिकाओं की सरसि सा स्वप्न स्मित उर प्रांत;
इन्दु विगलित शरद घन सा वाष्प का तन कांत
सजल करुणा थी खड़ी ज्यों इन्द्र धूम दिनांत !
अतल नील अकूल नयनों का द्रवित नीहार,
अश्रु फेनों से स्फुटित स्पंदित उरोज उभार;
आर्द्र सौरभ श्वास, स्मिति हिम-स्रस्त हरसिंगार,
स्खलित होते स्रोत भू से सुन चरण झंकार !

सहचरी थी क्षमा, गौरव रश्मि चुम्बित भाल,
युग पयोधर थे सुधास्रुत् ज्योति कलश विशाल;

न्याय कों धर अंक में मुख चूमती थी बाल,
दृष्टि पथ पर पंख खोले शुभ्र रजत मराल!
दीप लौ सी थीं अँगुलियाँ वरद कर में स्फार,
चूम अधरों को सुरा बनती सुधा की धार;
स्पर्श पा हँसता पुलक सुख से व्यथा का भार,
मर्त्य से था स्वर्ग तक दृग नीलिमा विस्तार!

आभा देही श्रद्धा प्रकटी अंतर्लोचन,
उर के सार भाग से कल्पित था प्रिय-श्री तन!
बरसाती आशीष रश्मि थी स्वर्गिक चितवन,
दिव्य रजत नीहार शांति से मंडित आनन!
भू प्रदीप की शिखा स्वर्ग की ओर ऊर्ध्वचित्
वह निश्चल निष्कंप, स्तंभ किरणों की शोभित;
सूक्ष्म चेतना सिन्धु मथन से स्वतः प्रस्फुटित,
शुभ्र उषा सी थी उर नभ में उदित अगुंठित!

साथ भक्ति थी, रोमांचों की स्रक् सी पावन,
नयनों के अभ्रों से झरते थे प्रकाश कण!
अधरों के पुलिनों पर बहता स्मिति का प्लावन,
उर-कंपन में बजते प्रिय पग नूपुर प्रतिक्षण!
तप्त कनक द्युति देह, सहज चंदन सी वासित,
गैरिक शृंगों से उरोज थे अश्रु माल स्मित;
सित कर्पूर शिखर सी; दिव्य शिखा से दीपित
सांध्य पद्म सा ध्यान मग्न उर प्रिय को अर्पित!

दृष्टि रश्मि थी ज्योति पथिक औ' स्वयं ज्योति पथ ,
चिर जाज्वल्यमान स्थिर धावित सप्त अश्व रथ !
किरणों के दूर्वाप्रभ नभ सी मुक्ति थी अमित ,
शुभ्र हंस घेरे थे उसको पंख खोल स्मित !
था आनंद उदधि अकूल उर में उद्वेलित ,
ज्योति चूर्ण झरता अंगों से मुक्त अनावृत !

अर्ध विवृत जघनों पर तरुण सत्य के शिर धर
लेटी थी वह दामिनि सी रुचि गौर कलेवर ;
गगन भंग से लहराए मृदु कच अंगों पर ,
वक्षोजों के खुले घटों पर लसित सत्य कर !

समाधिस्थ था ध्येय, सत्य आरूढ़ निरंतर ,
धरे अंक में भू को, सुर जल स्रोत शीर्ष पर ;
ताप गले में, सुधा शांति मस्तक पर भास्वर ,
लिपटा तन से भाव अभाव भूति औ' विषधर !
सदसद् देश काल से पर, त्रिक् तपस शूल धर ,
देवों का पोषक था वह, दैत्यों का जित्वर ;
काम क्रोध मद मत्सर थे उसके पद अनुचर ,
वह स्वर्णिम किरणों से मंडित, पाप तमस हर !

इस प्रकार चिर स्वर्ग चेतना हुई प्रतिष्ठित
जीवन शतदल पर, मन के देवों से भूषित !
जड़ धरणी के ताप शाप दुख दैन्य अपरिमित
काकों से पर खोल हुए लय तमस में अचित् !

चंद्रोदय

वह सोने का चाँद उगा ज्योतिर्मय मन सा,
सुरँग मेघ अवगुंठन से आभा आनन सा!
उज्वल गलित हिरण्य बरसता उससे झर झर,
भावी के स्वप्नों से धरती को विजड़ित कर!

दीपित उससे अंतरिक्ष पर मेघों का घर,
वह प्रकाश था कब से भीतर नयन अगोचर!
इन्दु स्रोत से ही प्रस्रवित निभृत अभ्यंतर,
प्राणों की आकांक्षा के वैभव से सुंदर!

वह प्रकाश का बिम्ब मोहता मानव का मन,
स्वप्नां से रंजित करता भू का तमिस्र घन!
आत्मा का पूषण वह, मनसोजात चंद्रमस्,
जिससे चिर आंदोलित जग जीवन का अंभस्!

देव लोक मेखला, इन्दु पूषण का अंतर,
सृजन शक्तियाँ देव, इन्द्र है जिनका ईश्वर!
दिव्य मनस वह, करता निखिल विश्व का चालन,
पोषित उससे अन्न प्राण मन का जग जीवन!

वह सोने का चाँद उठा ज्योतित अधिमन सा,
मानस के अवगुंठन के भीतर पूषण सा!
दुग्ध धार सी दिव्य चेतना बरसा झर झर
स्वप्न जड़ित करता वह भू को स्वर्जीवन भर!

द्वा सुपर्णा

दो पक्षी हैं : सहज सखा, संयुक्त निरंतर,
दोनों ही बैठे अनादि से उसी वृक्ष पर!
एक ले रहा पिप्पल फल का स्वाद प्रतिक्षण,
बिना अशन, दूसरा देखता अंतर्लोचन!

दो सुहृदों से मर्त्य अमर्त्य सयोनिज होकर
भोगेच्छा से ग्रसित भटकते नीचे ऊपर;
सदा साथ रह, लोक लोक में करते विचरण,
ज्ञात मर्त्य सब को, अमर्त्य अज्ञात चिरंतन!

कहीं नहीं क्या पक्षी? जो चखता जीवन फल,
विश्व वृक्ष पर नीड़, देखता भी है निश्चल!
परम अहम् औ' द्रष्टा भोक्ता जिसमें सँग सँग,
पंखों में वहिरंतर के सब रजत स्वर्ण रँग!
ऐसा पक्षी, जिसमें हो संपूर्ण संतुलन,
मानव बन सकता है, निर्मित कर तरु जीवन!
मानवीय संस्कृति रच भू पर शाश्वत शोभन
वहिरंतर जीवन विकास की जीवित दर्पण!

भीतर वाहर एक सत्य के रे सु पर्ण द्वय,
जीवन सफल उड़ान, पक्ष संतुलन जो, विजय!

चंद्रोदय

वह सोने का चाँद उगा ज्योतिर्मय मन सा,
सुरँग मेघ अवगुंठन से आभा आनन सा!
उज्वल गलित हिरण्य बरसता उससे झर झर,
भावी के स्वप्नों से धरती को विजड़ित कर!

दीपित उससे अंतरिक्ष पर मेघों का घर,
वह प्रकाश था कब से भीतर नयन अगोचर!
इन्दु स्रोत से ही प्रस्रवित निभृत अभ्यंतर,
प्राणों की आकांक्षा के वैभव से सुंदर!

वह प्रकाश का बिम्ब मोहता मानव का मन,
स्वप्नों से रंजित करता भू का तमिस्र घन!
आतमा का पूषण वह, मनसोजात चंद्रमस्,
जिससे चिर आंदोलित जग जीवन का अंभस्!

देव लोक मेखला, इन्दु पूषण का अंतर,
सृजन शक्तियाँ देव, इन्द्र है जिनका ईश्वर!
दिव्य मनस वह, करता निखिल विश्व का चालन,
पोषित उससे अन्न प्राण मन का जग जीवन!

वह सोने का चाँद उठा ज्योतित अधिमन सा,
मानस के अवगुंठन के भीतर पूषण सा!
दुग्ध धार सी दिव्य चेतना वरसा झर झर
स्वप्न जड़ित करता वह भू को स्वर्जीवन भर!

द्वा सुपर्णा

दो पक्षी हैं : सहज सखा, संयुक्त निरंतर,
दोनों ही बैठे अनादि से उसी वृक्ष पर !
एक ले रहा पिप्पल फल का स्वाद प्रतिक्षण,
बिना अशन, दूसरा देखता अंतर्लोचन !
दो सुहृदों से मर्त्य अमर्त्य सयोनिज होकर
भोगेच्छा से ग्रसित भटकते नीचे ऊपर;
सदा साथ रह, लोक लोक में करते विचरण,
ज्ञात मर्त्य सब को, अमर्त्य अज्ञात चिरंतन !

कहीं नहीं क्या पक्षी ? जो चखता जीवन फल,
विश्व वृक्ष पर नीड़, देखता भी है निश्चल !
परम अहम् औ' द्रष्टा भोक्ता जिसमें सँग सँग,
पंखों में बहिरंतर के सब रजत स्वर्ण रँग !
ऐसा पक्षी, जिसमें हो संपूर्ण संतुलन,
मानव बन सकता है, निर्मित कर तरु जीवन !
मानवीय संस्कृति रच भू पर शाश्वत शोभन
बहिरंतर जीवन विकास की जीवित दर्पण !
भीतर बाहर एक सत्य के रे सु पर्ण द्वय,
जीवन सफल उड़ान, पक्ष संतुलन जो, विजय !

व्यक्ति और विश्व

यह नीला आकाश न केवल,
केवल अनिल न चंचल,
इनमें चिर आनंद भरा
मेरी आत्मा का उज्ज्वल!
हलकी गहरी छाया के जो
घिरते ये रँग-बादल,
मेरी आकांक्षा की विद्युत्
बहती इनमें प्रतिपल!

मेरी प्राणों की हरीतिमा
तृण तरु दल में पुलकित,
मेरी प्रणय भावना से ही
कली कुसुम नित रंजित!
मैं इस जग में नहीं अकेला
मुझको तनिक न संशय,
वही चाह है कण कण में
जो मेरे उर में निश्चय!

मेरे भीतर परिभ्रमित ग्रह,
उदित अस्त शशि दिनकर,
मैं हूँ सब से एक, एक रे
मुझसे निखिल चराचर!

कब से हो जग से वियुक्त
मेरा अंतर था पीड़ित,
आज खड़ा भाई बहिनों के
सँग में चिर आनंदित !

प्रभात का चाँद

नील पंक में धँसा अंश जिसका
उस श्वेत कमल सा शोभन
नभोनीलिमा में प्रभात का
चाँद उनींदा हरता लोचन !
इसमें वह न निशा की आभा,
दुग्ध फेन सा यह नव कोमल,
मानवीय लगता नयनों को
स्नेहपक्व सकरुण मुख मंडल !

तिरते उजले बादल नभ में
बेला कलियों से कुम्हलाए,
उड़ता सँग सँग नाग दंत सा
चाँद सीप के पर फैलाए !
आभा इसकी हुई अंतरित
यह शशि मानो भू का वासी,
यह आलोक प्राण है, मुख पर
जीवन श्रम की भरी उदासी !

दिव्य भले लगता हो किरणों से
मंडित निशिपति का आनन,
गौर मांस का सा यह शशि मुख
भाता मुझे ज्योति आवृत मन !

उदित हो रहा भू के नभ पर
स्वर्ण चेतना का नव दिनकर
आज सुहाते भू जीवन के
पावन श्रमकण मानव मुख पर !

ऐसे ही परिणत आनन सा
यह विनम्र विधु हरता लोचन ,
भू के श्रम से सिक्त, नम्र
मानव के शारद मुख सा शोभन !

हरीतिमा

(प्राण)

ओ हरित भरित घन अंधकार !

तृण तरुओं में हँस हँस श्यामल
दूर्वा से भू को कर कोमल ,
ढँक लेते जीवन को प्रतिपल
तुम प्राणों का अंचल पसार !

सुख स्पर्शों से अणु अणु पुलकित ,
मादकता से उर उर स्पंदित ,
अति जव से श्वास अनिल नर्तित ,
तुम रंग प्राण करते विहार !

तुम प्राणोदधि चिर उद्वेलित
जीवन पुलिनों को कर प्लावित ,
जड़ चेतन को करते विकसित
अग जग में भर नव शक्ति ज्वार !

तुममें स्वप्नों का सम्मोहन ,
आकांक्षा की मदिरा मादन ,
आवेगों का मधु संघर्षण ,
दुर्धर प्रवाह, गति औ' प्रसार !

जग जीवन को कर परिशोभित ,
इच्छाओं के स्तर स्तर हर्षित ,
रागों द्वेषों से चिर मंथित ,
निस्तल अकूल तुम दुर्निवार !
ओ रोमांचित हरितांधकार !

छाया पट

मन जलता है,
अंधकार का क्षण जलता है,
मन जलता है!

मेरा मन तन बन जाता है,
तन का मन फिर कट कर,
छँट कर,
कन कन ऊपर
उठ पाता है!
मेरा मन तन बन जाता है!

तन के मन के श्रवण नयन हैं,
जीवन से संबंध गहन हैं;
कुछ पहचाने, कुछ गोपन हैं,
जो सुख दुख के संवेदन हैं!

कब यह उड़ जग में छा जाता,
जीवन की रज लिपटा लाता,
औ' मेरे चेतना व्योम में
इन्द्रधनुष घन बन मुसकाता?
नहीं जानता, कब, कैसे फिर
यह प्रकाश किरणें बरसाता!

बाहर भीतर ऊपर नीचे
मेरा मन जाता आता है,
सर्व व्यक्ति बनता जाता है!

तन के मन में कहीं अंतरित
आत्मा का मन है चिर ज्योतित,
इन छाया दृश्यों को जो
निज आभा से कर देता जीवित!

यह आदान प्रदान मुझे
जाने कैसे क्या सिखलाता है!
क्या है ज्ञेय? कौन ज्ञाता है?
मन भीतर बाहर जाता है!

मन जलता है,
मन में तन में रण चलता है;
चेतन अवचेतन नित नव
परिवर्तन में ढलता है!
मन जलता है!

आवाहन

सृजन करो नूतन मन !
खोल सके जो ग्रंथि हृदय की,
उठा सके संशय गुंठन,
आँक सके जो सूक्ष्म नयन से
जीवन का सौन्दर्य गहन !
भेद सके जो दैन्य दुरित औ'
मृत्यु अविद्या के भीतर,
जहाँ प्रेम आशा शोभा
अमरत्व प्रतिष्ठित हैं प्रतिक्षण !

युग युग से प्रार्थना साधना
करता मानव, हे ईश्वर,
मुझे स्वर्ग दो, मुझे मुक्ति दो,
बांधव पुत्र पौत्र स्त्री धन !
जाति के लिए, धर्म के लिए,
वंश वेलि के लिए अमर
युग युग से रोया गाया है,
पार्थिव मानव देहज मन !

सृजन करो नूतन मन !
प्रार्थी आज मनुज आत्मज मन
नव्य चेतना का भूपर,
जिसकी स्वर्णिम आभा में
विकसित हो नव संस्कृत जीवन !
प्रार्थी आज निखिल मानवता,
उठे मृत्यु से वह ऊपर,
स्वर्ण शांति में ऐक्य मुक्ति का,
भू पर स्वर्ग उठे शोभन !

निवेदन

रँग दो मेरे उर का अंचल !
युग युग के आँसू से गीला
मेरा स्नेही का अंतस्तल !

कितनी आशंका भय, आशा,
ग्लानि पराभव औ' अभिलाषा,
कितने स्वप्न--मूक है भाषा !
मेरे इन प्राणों में कोमल !

जीवन का चिर भरा कलपना,
सुख का तपना, दुख का तपना,
भंग करो मत स्वपना अपना,
केवल मन को दो अदम्य वल !

सव खोकर भी मैंने पाया,
तुमको जो उर में उलझाया;
ममता की अ ;गुंठन छाया
रहने दो निज मुख पर उज्वल

मैं न थकूँगा हो अनंत पथ,
जरा मृत्यु से तन मन लथपथ,
ज्ञान न हो जीवन का इति-अथ,
चिर प्रतीति का दो पथ संवल

भू लता

!

घने कुहासे के भीतर लतिका दी एक दिखाई,
आधी थी फूलों में पुलकित, आधी वह कुम्हलाई!
एक डाल पर गाती थी पिक मधुर प्रणय के गायन,
मकड़ी के जाले में वन्दी अपर डाल का जीवन!

इधर हरे पत्ते यात्री को देते मर्मर छाया,
उधर खड़ी कंकाल मात्र सूनी डालों की काया!
विहगों के थे गीत नीड़, कृमि कुल का कर्कश क्रंदन,
मैं विस्मय से मूढ़, सोचता था इसका क्या कारण!

बोली गुंजित हरित डाल, साँसें भर सूखी टहनी,
मैं हूँ भाग्य लता अदृष्ट, मैं सगी काल की बहनी!
सुख दुख की मैं धूपछाँह सी भव कानन में छाई,
आधे मुख पर मधुर हँसी, आधे पर करुण रुलाई!

शूल फूल की वीथी, चलता जिसमें रोना गाना,
खोज खोज सब हार गए, मुझको न किसी ने जाना!
मैंने भी ढूँढा, पर मुझको मूल न दिया दिखाई,
वह आकाश वेलि सी जीवन पादप पर थी छाई!

जन मन के विश्वासों से बढ़ती थी वह हो सिंचित,
एक दूसरे से लिपटे थे, जिससे थी वह जीवित!
सब मिल उसको छिन्न भिन्न कर सकते थे, यह निश्चित,
किंतु उसी के बल पर रे मानव मानव से शोषित!

नाच रही जो ज्योति ज्योति-पिंडों में वैभव भास्वर ,
कहती वह, यह छाया मेरी नहीं, तुम्हारी भू चर !
छोड़ो युग युग का छाया मन, वरो ज्योति मन भव जन !
प्राक्तन जीवन बना भाग्य, चेतना मुक्त हो नूतन !

कौवे के प्रति

तरु की नग्न डाल पर बैठे लगते तुम चिर सुंदर,
कोविदार के शकुनि, पार्श्वमुख, सांध्य कपिश नभ पट पर!
कृष्ण कुहू में जनमे तुम तरु कोटर में, वन नभचर,
तारों की ज्यों छाँह गले पड़ गई नीड़ से छन कर!

पंखों की काली उड़ान तुम भरते नित ऋजु कुंचित,
शुभ्र ज्योति का तुम पर कभी प्रभाव न पड़ता किञ्चित्!
रंग नहीं चढ़ता जिस पर वह यती व्रती है निश्चित,
समिध पाणि मैं प्रश्न पूछता तुमको मान विपश्चित!

तुम भविष्य वक्ता जग विश्रुत, प्रणय दूत कवि कीर्तित,
मढ़वा चुके चोंच सोने से फिर फिर प्रीति पुरस्कृत!
क्या है जग के दुरित दैन्य का कारण? खग, दो उत्तर,
कलुष कालिमा की होगी कालिमा तुम्हारी सहचर!

मंत्री वृद्ध तुम्हारे कौशिक दिवाभीत चमगादर,
जाग्रत रहते भूत निशा में तरुसेवी तापसवर!
गरदन मटका हिला करट, कुछ विस्मित, कुछ चिन्तनपर,
एक चक्षु को पलट, दूसरे लोचन पुट में सत्वर!

मैंने कहा, स्पष्ट भाषी, तुमको कहने में क्या डर?
यह महत्व का प्रश्न, लोक जीवन है इस पर निर्भर!
काँव काँव कर कहा काक ने ग्राम्य भणिति में निश्चय,
काम, काम है तापों का कारण, था उसका आशय!

मैंने पूछा, मोह काम से पीड़ित जग निःसंशय,
किन्तु, कौन पा सकता, बलिभुज् ! अमिट कामना पर जय ?
पक्ष-पात कर उड़ा विहग, काले प्रकाश से भर मन,
समाधान मेरी शंका का उस तम में था गोपन !

पक्षपात है नाम कामना का, जो दुख की कारण,
उज्वल सभी प्रकाश नहीं रे, काला नहीं सभी तम !
इस प्रकाश के शिखी पिच्छ से रूप अनेक मनोहर,
जिनमें लिप्त मनुज मन रहता लोभ स्वार्थ हित तत्पर !
अंधकार के रूप विविध, घनश्याम इन्द्रधनु जलधर
उर्वर रखते भू को, मोहक काली कोयल के स्वर !

ज्योति हंस औ तमस काक इन दोनों से जो है पर
उसी सर्वगत पर जो केन्द्रित रहे मनुज का अंतर,
हंस रहे जग में, मयूर औ' वायस रहें परस्पर !
सब के साथ अपाप विद्ध, स्थित प्रज्ञ रहे जग में नर !

श्वेत कृष्ण मिल, रंग पूर्ण नित धरें जगत जीवन पथ,
पक्षपात से रहित मनुज हो विरत, विश्व में भी रत !
किया हृदय ने ज्योति श्याम परभृत् का मन में स्वागत,
दीप तले के तम के छाया खग, तुम दीप शिखावत् !

संक्रमण

खो गया जीवन रस,
रहस स्पर्श,
सृजन का मुक्त रभस
निखिल हर्ष !

रह गया इतिहास, विज्ञान,
दर्शन, सहस्र शास्त्र,
सभ्यता के ब्रह्मास्त्र !
खो गई एकता,
व्याप्त है अनेकता !

रह गई जाति पाँति,
देश प्रांत,
युगों की रीति नीति,
रूढ़ि भ्रांत,
स्वर्ग नरक ईति भीति,
जन अशांत !

खो गई मानवता,
खो गई वसुंधरा !
नहीं सत्य सहृदयता,
नहीं मही विश्वम्भरा !

आओ हे नव नूतन,
स्वर्ण युग करो सृजन!
एक हों भू के जन
नव्य चेतना के कण!

देशों से धरा निखरे,
जुड़ें मनुज उर बिखरे!
दृष्टि सौन्दर्य जड़ित,
अधर हों हृदय स्मित!

आत्मा आए सम्मुख,
महिमान्वित मानव मुख!
आओ हे नव नूतन,
मानव हों भू के जन!

नारी पथ

कितने रेखा स्मिति अधर
प्रथम मधु पल्लव के,
प्रणय रुधिर रँगे अधर
करते मृदु मर्मर !

चपल मौन मुखर नयन
नील पद्म स्नेह सर के,
प्रीति किरण, मुग्ध नयन
करते शत वर्षण !

कितनी वेणियाँ लोल
लोटतीं पीठों पर,
खुली बँधीं फूल गुँथीं
सुरभित तम निर्झर !

नवल मुकुल सृष्टि अंग,
चकित मृग ग्रीवा भंग,
पुष्प शिखर से उरोज,
चारु हंस, छवि सरोज;
रूप की प्ररोह बाँह
प्राण कामना प्रवाह,...

सचमुच,—
एक अंगना से सुभग
लगता अंगों का जग,
शोभा सरसिज पग !

सौ सौ उगते शशि मुख
देते आँखों को सुख,
मिटा मोह निशा दुख !

ममता अधिकार नहीं ,
मोह तिरस्कार नहीं ,
चुंबन या परिरंभण !
केवल प्रतीति प्राण
हृदयों का प्रीति दान ,
युवक युवती समान !

अवयव कुवलयित सृष्टि
मोहित करती है दृष्टि !
जिस पर मानव भविष्य
करता नव किरण वृष्टि !

नील धार

(विश्व यमुना)

ओ नीलधार, अति दुर्निवार !

रवि शशि से स्वर्ण रजत चुंबित,
जीवन के स्वप्नों से ज्योतित,
तुम गलित नीलिमा-सी बहती
आकांक्षा का हर अंधकार !

प्राणों के सुख से आंदोलित,
चिर रभस कामना से मुखरित,
युग युग की विश्व चेतना तुम,
उच्छ्वसित उरोजों का उभार !

फेनों के क्षण कर स्वप्न ग्रथित,
दिशि के तट जीवन से प्लावित,
तुम अतल अकूल तरंगित नित
ज्यों स्वर्ग मर्त्य के आर पार !

ऋजु कुंचित जग जीवन का मग,
धर ऊर्ध्व विषम सम नर्तित पग,
नभ की हर कांति, मरुत का जव
भू पर करती प्रणयाभिसार !

जीवन के रागों से रंजित,
चिर गूढ़ स्पृहाओं से मंथित,
अकथित अंतर आवेशों का
उद्वेलित तुम में मर्म-भार !

असफल आशाओं से पा वल,
स्तंभित अभिलाषा से चंचल,
तुम हृदय ग्रंथियों की प्रवाह
संवेदन शील, द्रवित अपार !

सद् असद् तुम्हारे हैं दो तट,
तुम ज्योति तमस की जीवन पट,
दुख सुख में रो हँस, सुख दुख को
मज्जित करते गति औ' प्रसार !

गंगा की दुग्ध धार पावन
तुमसे मिल वनी पूर्ण, शोभन,
वह प्रभु के श्रीपद से निःसृत,
तुम विश्व-श्याम उर से उदार !
ओ नीलधार, चिर निर्विकार !

युग प्रभात

स्वर्ण किरण, स्वर्ण किरण,
विचरतीं धरती पर
स्वप्नों की तूलि धर
चेतना रंजित कर
जगती के रजकण !

स्वर्ण किरण, स्वर्ण किरण,
नभ से परियों सी उतर
स्वप्न नयन कर अंतर,
जीवन सौन्दर्य के
बरसातीं स्मित निर्झर !

स्वर्ण किरण, स्वर्ण किरण,
हँसमुख, आदित्य वरण,
धरतीं धरती पर चरण
हरतीं चिर छायावरण
चेतना पथ से विचरण
करतीं मंगल वितरण !

धरा स्वर्ग-रक्त स्नात,
प्रस्फुटित नव प्रभात
चेतना जलजात !
विश्व सरसी में नवल खोल किरणों के दल
फूटता युग प्रभात
शोभित कर दिङ्‌मंडल !

असफल आशाओं से पा बल ,
स्तंभित अभिलाषा से चंचल ,
तुम हृदय ग्रंथियों की प्रवाह
  संवेदन शील, द्रवित अपार !

सद् असद् तुम्हारे हैं दो तट ,
तुम ज्योति तमस की जीवन पट ,
दुःख सुख में रो हँस, सुख दुख को
  मज्जित करते गति औ' प्रसार !

गंगा की दुग्ध धार पावन
तुमसे मिल बनी पूर्ण, शोभन ,
वह प्रभु के श्रीपद से निःसृत ,
  तुम विश्व-श्याम उर से उदार !
  ओ नीलधार, चिर निर्विकार !

युग प्रभात

स्वर्ण किरण, स्वर्ण किरण,
विचरतीं धरती पर
स्वप्नों की तूलि धर
चेतना रंजित कर
जगती के रजकण !

स्वर्ण किरण, स्वर्ण किरण,
नभ से परियों सी उतर
स्वप्न नयन कर अंतर,
जीवन सौन्दर्य के
बरसातीं स्मित निर्झर !

स्वर्ण किरण, स्वर्ण किरण,
हँसमुख, आदित्य वरण,
धरतीं धरती पर चरण
हरतीं चिर छायावरण
चेतना पथ से विचरण
करतीं मंगल वितरण !

धरा स्वर्ग-रक्त स्नात,
प्रस्फुटित नव प्रभात
चेतना जलजात !
विश्व सरसी में नवल खोल किरणों के दल
फूटता युग प्रभात
शोभित कर दिङ्मंडल !

सविता

लो, सविता आता सहस्रकर,
सविता, उज्वल व्योम पृष्ठ पर,
नव्य रश्मियों से ज्योतिर्मय,
अंतरिक्ष को आलोकित कर!
सप्त अश्व से सप्त लोक कर
पार, वेग में दिव्य तेज भर,
वह महेन्द्र आ रहा घिरा, निज
किरणों से त्रिभुवन का तम हर!

उठो, मनुष्यो, जागो, करो
उषाओं का दिव में अभिवादन,
मार्ग उन्होंने खोल दिया
सविता का, जो ज्योतिर्मय पूषण!
अंधकार हट गया, प्राण औ'
जीवन नव हो रहे प्रवाहित,
वह महेन्द्र आ रहा, रश्मियों से
आभृत, प्रकाश से आवृत!

अंतरिक्ष पर चलने वाले
आज पा गए हैं अभिनव पथ,
नव प्रकाश का सूर्य उन्हें
मिल गया, दमकता सप्त अश्व रथ!

स्वर्ग ओर चिर धावमान, उस
दिव्य हंस के पंख ज्योतिमय
फैले हुए सहस्र दिनों से,
बढ़ता ही जाता वह निर्भय !
सब भुवनों को देखता हुआ,
देवों को ले हृदय में सकल,
व्याप्त सर्व लोकों में वह
फैले अपार पंखों में दिशिपल !

... ...

हाउ. हाउ, वह स्वर्ण पुरुष,
वह ज्योति पुरुष मैं हूँ अजर अमर !
झरते सप्त धार सोने के
सतत मातरिश्वा से निर्झर !

श्री अरविन्द दर्शन

ज्योति श्री अरविन्द, चेतना के दिव्योत्पल,
पूर्ण सच्चिदानंद रूप शोभित स्वर्णोज्वल!
अति मानस में विकसित तुम आलोक हसित दल,
ओतप्रोत जिसमें असीम आनंद रजत जल!

स्तर पर स्तर कर पार चेतना के, योगेश्वर,
स्वर्णारुण से नव्योदित तुम चिदाकाश पर!
मानव में ईश्वर, ईश्वर से मानव बन कर
आए, लौट धरा पर, ले नव जीवन का वर!

तुम भविष्य के दिव्यालोक, देव, अति जीवित,
मानव अंतर तुमसे उच्च, अतल, अति विस्तृत;
रुद्ध द्वार कर मुक्त हृदय के, चिर तमसावृत,
अंतर्जीवन सत्य कर दिया तुमने ज्योतित!

अतिमानस से भी ऊपर, विज्ञान भूमि पर,
तुम अध्यात्म तत्व के हिमगिरि से स्थित निर्भर!
ज्योति मूर्त चेतना ज्वलित हिम राशि सी निखर
सर्गों स्वर्गों के पार उठाए सत्य के शिखर!

एक सत्य उपनिषद् ब्रह्म विद्या के निश्चय,
ज्योति स्तंभ तुमसा देव का सत्य अनंतम,
निज चेतना सेतु ऊर्ध्व जिन पर ज्योतिर्मय
जन पार करे अंतर्भूमि के, अति मानस, जय!

किया वेद वेदांगों का जब तुमने मंथन,
हुए प्रकाशित तत्व, जगा मंत्रों में जीवन;
परम व्योम से तुम्हें, ऊर्ध्वचित्, ध्यान मग्न मन,
विद्युत् लेखा तुल्य ऋचाओं का हुआ स्फुरण!

स्वर्ण नील के मध्य, रजत की अनिल में सुघर,
छोड़ दिव्य स्वप्नों की रत्नच्छाया भास्वर,
स्वर्ग धरा पर लाने, आए स्वयं तुम उतर
जन मंगल हित पार्थिवता का भार वहन कर!

स्वर्ग और वसुधा का करने स्वर्णिम परिणय!
इन्द्रचाप का सेतु रच रहे तुम ज्योतिर्मय,
नृत्यशील चिर हरित यौवना भू पर छविमय
चिर अनंत की अमर वृत्तियाँ बोकर अक्षय!

अग्नि विहग से, स्वर्ण शुभ्र तुम खोल दिव्य पर,
विचर रजत नीहार शांति में दिशि पल के पर,
प्रसव व्यथित वसुधा हित लाए अखिल शोकहर
रश्मि कलश में दिव्य प्रीति की स्वर्ण सुरा भर!
नील शकुनि, तुम गाते देवों स्वर्दूतों हित,
चिदानंद के अग्नि बीज भू पर झरते स्मित!
देश काल से परे कौन वह व्योम दुख रहित
शाश्वत सुख का हर्ष जहाँ से लाते तुम नित!

कैसा वहाँ प्रकाश, शांति, आनंद चिरंतन?
जहाँ सच्चिदानंद स्वयं करते सहज सृजन!

उठा सत्य निज आनन से हिरण्य अवगुंठन
जहाँ सूक्ष्म सुंदरता का सजती सम्मोहन !

छायाभा से रचित वहाँ क्या सप्तदल भुवन !
काल दिशा को लिए अंक में करता नर्तन !
जहाँ स्वयं प्रभु रहते कैसा वह परम गगन !
जहाँ अनिर्वचनीय अमित आनंद का स्रवण !

गूढ़ तमस में, जड़ में हो चित् शक्ति तिरोहित,
अन्न प्राण मन में फिर कैसे हुई प्रस्फुटित,
कवि ऋषि, तुमने सूक्ष्म दृष्टि से कर ज्यों चित्रित
रहस शक्ति से निखिल सृष्टि फिर कर दी विकसित !

खोल अशेष रहस्य सृजन का तुमने गोपन
दिया विश्व को नव जीवन विकास का दर्शन !
ज्योति चिह्न जो छोड़ गए भू पर प्रबुद्ध जन
सूचित उनसे अति मानव का पुण्य आगमन !

ऊर्ध्व चेतना का हो समदिक् मूर्त संचरण
धरा स्वर्ग के ज्योति छत्र सा भेद दिव्य मन,
वहिरंतर जीवन का कर तुम, देव, उन्नयन,
दिव जीवन का धरती पर कर रहे अवतरण !

युग युग के पूजन आराधन जप तप साधन
आज कृतार्थ अखिल आदर्श शास्त्र नय दर्शन,
मनुज जाति का सफल सकल जीवन संघर्षण
पूर्ण आज प्रभु तुममें दिव्य देह धर नूतन !

जल जीवन में मच्छ, कच्छ तुम कर्दम में बन,
भू जड़त्व में शूकर, वनचर में नृसिंह तन,
आदि मनुज वामन, शूरों में राम परशुपण,
मर्यादामय राम, विश्वमय बने कृष्ण घन!

आज लोक संघर्षों से जब मानव जर्जर,
अति मानव बन तुम युग-संभव हुए धरा पर!
अन्न प्राण मन के त्रिदलों का कर रूपान्तर,
वसुधा पर नव स्वर्ग सँजोने आए सुंदर!

छूपाते हैं पंख कल्पना के, न पद कमल,
विकसित जो अंतर जल में जाज्वल्य ज्योति दल,
घेरे तुम्हें जननि का ज्योतिष्मत् चिन्मंडल.,
मुग्ध चमत्कृत चक्षु वाक् मन पा जाते फल!

दूत दिव्य जीवन के, दिव्य तुम्हारा दर्शन,
अति मानस का स्पर्श प्राण मन करता चेतन!
मानव उर प्रच्छन्न तुम्हारा नव पद्मासन,
तन मन प्राण हृदय ये तुमको, देव, समर्पण!

स्वर्णोदय

(जीवन सौन्दर्य)

(१)

जयति, प्रथम जीवन स्वर्णोदय,
रक्त स्फीत, लो, दिशा का हृदय!
काल तमस व्यवधान चीर कर
किसने मारा यह स्वर्णिम शर?
जय, अमर्त्य जीवन यात्री, जय!

देखो, कोमलार्त कर क्रंदन
किसने जग में किया आगमन!
(यह क्या भू का रुदन सनातन?)
पलकों में जग उठे निमिष क्षण,
स्तब्ध हृदय में दिशि का स्पंदन!

गुहा बद्ध चिर स्रोत हो स्खलित
जीवन पथ में हुआ प्रवाहित!
मुक्त अरूप रूप धर सीमित,
श्वासों से कर गगन तरंगित!

मंगल गायन!
मंगल वादन!
क्यों न मनाएँ जन्मोत्सव जन!
धन्य आज का पुण्य दिवस क्षण,
फिर अमर्त्य ने धरा मर्त्य तन!

स्वागत, स्वागत,
प्रयत नवागत,
हो प्रशस्त तेरा जीवन पथ,
जग के शूल फूल हों अभिमत,
प्रिय शिशु, तू हो पूर्ण मनोरथ!

ओ मा, वह रोता है, उसको स्तन्य पिलाओ,
वह अशक्त असहाय, उसे निज अंक लगाओ!
कैसे पार करेगा दुर्गम जगती का मग
वह निर्बल निर्बोध पथिक, वह पंख हीन खग!

लोरी गाओ, लोरी गाओ,
फूल दोल में उसे झुलाओ;
निंदिया की चल परियो, आओ,
मुन्ना का मुख चूम सुलाओ!
स्वप्नों के छाया पंखों को
लालन के ऊपर सिमटाओ!

चंद्रलोक की परियो, आओ,
स्मिति से सुधा अधर रँग जाओ,
मलय सुरभि की चंचल परियो,
साँसों से आँचल भर लाओ!
जुगनूं बरसा, वन की परियो!
झिलमिल कर पलकें झपकाओ,
मेघों की मृदु रिमझिम परियो;
लालन का गा हृदय रिझाओ!

अहरह उर कंपन में दोलित,
मर्म स्पृहा की मूर्ति देख स्मित,
मुग्ध नव जननि, बलि बलि जाओ,
लाड़ लुटाओ, प्यार लुटाओ,
लोरी गाओ!

स्निग्ध पूस का रजतातप आशीर्वाद सा,
बरस रहा पृथ्वी पर स्वर्गिक स्पर्श ह्लाद सा!
शांत प्रकृति मुख, सौम्य दिशा स्मिति, नील विहायस
शीतलोष्म पंखों के सुख में सिमटा सालस!
नलिनी उर में लेटा हिमजल
बाल चेतना सा तारोज्वल,
हँसमुख, निर्मल, चंचल!
लो, वह नटखट पाँव चलाता,
कौन उसे बढ़ना सिखलाता?
अब तक केवल क्रंदन
जिसका था संभाषण,
वह अस्फुट स्वर में तुतलाता!

दुधमुँही सरल मधुर मुसकान
न जाने कहती किन अनजान
रहस्यों के आख्यान!
कौन अप्सरियाँ आ चुपचाप
कर रहीं उससे मौनालाप,
फूटती स्वप्न सरित स्मिति आप!

नाम रूप के जग को, केवल
वह चितवन स्पर्शों से प्रतिपल
अंकित करता उर में कोमल !
तारा‌ओं से भरा गगन ;
स्वप्नों के वन सा सघन ,
हृदय में उपजाता गोपन संवेदन !

अब, चंदा ने चाँदी की नैया में मोहन
बिठा लिया ज्यों लालन का मन ,
पलने में केवल हिलता डुलता तन !

दीप शिखा के लिए वह मचल
नचा रहा निज कोमल करतल !
चूँ चूँ करती चिड़िया सुंदर
फूल पाँखुड़ी उड़ती फर् फर् ,
उन्हें बनाने को निज सहचर
पास बुलाता वह इंगित कर !
सोच रहा ज्यों एकटक नयन ,
मौमाखी क्या कहती भन भन
कानों में भर गुंजन !

मर्मऽर, मर्मऽर ,
तरुओं के चल पत्र रहे झर !
विरल टहनियों की जाली से
लगता मुक्त प्रशस्त दिगंतर !

यह लो, नव शिशु सा ही सुंदर
निखिल विश्व बन गया दिगंबर ;
मांसल नवल पल्लवों से वह
वेष्टित होगा सत्वर !

कहाँ जरा है ? कहाँ रे मरण ?
सृजन शील जग का परिवर्तन !
कौन, कहाँ से आए ये क्षण पथिक,
कहाँ जा रहे निरंतर,
पेड़ों के अगणित पीले पत्ते उड़ उड़ कर ?—
धरती इनसे क्यों न गई भर !
कब से झर झर
चुपके हँस कर
ये किस पर हो रहे निछावर ?
क्या ये उड़ते पत्ते केवल ? कौन यहाँ दे उत्तर !

यह अनंत यात्रा का रे पथ,
शिशु अनंत का यात्री शाश्वत ;
वह अनादि से नित्य नवागत,
अपने ही घर का अभ्यागत !
सूर्य चंद्र उसके ही लोचन,
श्वसन उसी के उर का स्पंदन ;
उसका आत्म प्रसार दिशा क्षण,
आदि सृष्टि का कारण,
शिशु अनंत का पांथ चिरंतन !

क्रम विकास के पथ से निश्चित
विश्व नीड़ कर अपना निर्मित,
जननि जनक में स्वयं विभाजित
वह अवतरित हुआ या विकसित ?
कोटि योनि औ' कोटि जन्म तर
विविध भ्रूण स्थितियों में बढ़कर,
दिव्य अतिथि वह मनुज देह धर
आया फिर से मधुर मनोहर !

देखो, देखो आँखें भर,
कैसा रहस्यमय ईश्वर !
देखो हे आँखें भर
कैसा सुंदर ईश्वर !

(२)

रूप रंगों में रहीं पुकार
पल्लवित विश्व प्रकृति की डाल,
पहन नव जीवन ज्वाल !
किशोरी औ' किशोर सुकुमार
खेलते : यह प्रिय क्रीड़ा काल !

न अब वह प्रकृति मुक्त शैशव,
जगा उर में स्वभाव वैभव ;
हृदय क्या कहता कुछ गोपन
परस्पर बढ़ता आकर्षण !

अभी मन बना न नारी नर,
सखा, भइया बहना दो जन!

खेल कूद अब इनका जीवन,
गोद बन गई जग का आँगन;
कौतूहल से भरा मुकुल मन,
खोज रहे कुछ उत्सुक लोचन!

जीवन स्रोत बह चला कल कल
जग में भर हँसमुख कोलाहल;
नवल विश्व रे नवल धरातल,
फुल्ल नवल नभ का नीलोत्पल;
निखिल पुरातन नवल, चिर नवल,
जीवन स्रोत वह चला कल कल!

आः, समीर किस सुख से चंचल,
उड़ता यह क्या मा का आँचल!
लोट रही हैं लहरें प्रतिपल
उछल रहा किशोर उर कोमल!
छू छू कर कैशोर पग चपल
हँस उठता पुलकित दूर्वादल!

कहाँ गया अब शैशव का घुटनों वल चलना,
वह चंदा के लिए मचलना?
कहाँ छिपा लकड़ी का तू तू,
कहाँ भगा लाठी का घोड़ा?

वह काग़ज़ की नाव
जिसे शिशु ने जीवन सागर में छोड़ा !

उसे याद, जब प्रथम चरण धर
खड़ा रह सका था वह क्षण भर,
विजय गर्व औ' तड़ित हर्ष जो
सहसा मृदु उर में था दौड़ा ?
कब भागा लकड़ी का तू तू,
कब छूटा लाठी का घोड़ा !

बाल कल्पना का वह जग न रहा अतिरंजित,
बचपन के साथी चिर परिचित
गुड्डे गुड़िया, मधुर खिलौने थे जो जीवित,
आज धूल में पड़े काठ के सब हाथी घोड़े मृत !

उड़ते पत्ते बनते थे तब उड़ती चिड़ियाँ,
ओने कोने में छिपकर रहती थीं परियाँ ;
आस पास के झुरमुट ठूँठ सभी थे हौवा,
नित्य डाकिया बन आता आँगन का कौवा ;
जादूगर का खेल जगत था रहस भावना कल्पित,
पलक मारते ही उगता था पेड़ आम का निश्चित !

चहक रहे अब मुखर बाल खग,
रोके रुकते नहीं चपल पग !
सहज हर्ष से उमँग रहे अँग,
लड़भिड़ रो हँस रहते ये सँग !

इनके हास लास रंगों से ,
नव अंगों से, नव भंगों से ,
रंग प्राण वन जाता है फिर क्षण भंगुर जग जीवन का मग !

संभव अखिल असंभव मिलकर
कौतुक से भर देते अंतर ,
हास रुदन सी ही घटनाएं
आतीं औ' जातीं टिक क्षण भर !
सुन पड़ता, लो, दूर कंठ स्वर—

डम डम डमक, कलंदर आया !
बंदर घुड़की छोड़ो भइया, डमरु जगाया !
संध्या बूढ़ा ने सूरज का गेंद छिपाया ,
दादी ने आँगन भर में सेंदुर बिखराया !
ऐंठ दिखाते थे सब को अकड़ू बधवा जी ,
गीदड़ ने अपनी चालों से खूब छकाया !
खेल कूद में रहे छलाँगें भरते दिन भर ,
कछुए ने खरहा बच्चू को सबक़ सिखाया !
हँसते थे वन के राजा छोटी चुहिया पर
फंदा उसने काट जाल से उन्हें छुड़ाया !
बाल न बाँका कर पाए राजा बाबा का ,
अंटी में वह सींग स्यार का था रख लाया !
कभी कबड्डी नहीं खेलते थे सँग रामू ,
इम्तहान में तभी फिसड्डी नंबर पाया !
डम डम डमक, कलंदर आया !

सीख रहे ये पग पग पर जाने अनजाने,
उत्सुक यह विस्तृत जग इनको पाठ सिखाने,
नित्य बढ़ रहे मन में ये निर्बोध सयाने !

हृदय क्रिया थी जिसकी मृदु स्मिति
क्रंदन ही वाणी की अथ-इति,
उस जीवन के मांस पिंड में
कैसे फूटी जग की भाषा ?
साँसों के सूने उर में
कैसे आई आशा, अभिलाषा ?

स्पर्श जगत में था जो जीवित,
स्वाद मात्र से बस कुछ परिचित,
स्वप्न लोक के उस वासी में
कैसे जागी बुद्धि भावना स्मृति जिज्ञासा ?
कौन मिटाए ज्ञान पिपासा !

वोध निहित था क्या उर भीतर,
अथवा व्याप्त विश्व में वाहर ?
छिपा विन्दु में था क्या सागर,
वाह्य परिस्थितियों पर शिशु-विकास या निर्भर ?
बढ़ते या वे वहिरंतर की प्रतिक्रियाओं से लोकोत्तर ?
कहीं नहीं क्या सम्यक् उत्तर !

देख चुके ये शरद पंच दस,
शिशिर वसंत ग्रीष्म हिम पावस ;

उदित अस्त अब होता दिनकर,
घटता बढ़ता रवि स्मित हिमकर;
स्वप्नों का तारापथ सुंदर
ज्वलित ज्योति पिंडों से भास्वर!

राहु केतु से चंद्र रवि ग्रसित
होते भू शशि गति से निश्चित!
दिवस पाख औ' मास बदलते
ऋतु संवत्सर!

कथा इन्द्र की इन्हें सब विदित
इन्द्र धनुष क्यों सप्त रंग स्मित;
तड़िल्लता क्यों खिलती कुछ क्षण,
घन घमंड क्या करता घोषण!
वाष्प पंख के बादल जलधर
बरस बरस धरती पर उर्वर
हँसमुख हरियाली देते भर!

परियाँ हुईं अदृश्य, बंद अब दंत कहानी,
अब वे राजकुमार न अब वे राजा रानी!
अब भूगोल गणित इतिहास ग्रथित पृष्ठों पर,
चित्र प्रकृति से विस्मित चितवन गड़ी निरंतर!
चपल विश्व के रूप रंग बन काले अक्षर
रेंग पाँति में रहे चींटियों से हिलडुल कर!
जाने बाहर दृष्टि दौड़ जाती कब चंचल,
राजधानियाँ हो जातीं भूतल से ओझल!

नीले नभ पर, गिरि प्रांतर पर, खग नीड़ों पर
छाया पथ से स्वप्न क्षितिज में उड़ता अंतर !
चिड़ियों के पंखे, हिम के मोती बटोर कर
झरनों के फेनों सँग हँसता कलरव से भर !

क्या हैं ये इतिहास, युद्ध सम्राट्, प्रथित जन !
विविध,शास्त्र, विज्ञान ! इन्हीं का रे गत जीवन !
इनके आविष्कार सभी, इनके अन्वेषण,
युग युग की शैशव अनुभूति वहन करता मन !

फिर से ये करते अतीत का सिंहालोकन,
कहाँ आज है विश्व ! कहाँ अब मानव जीवन ?
किन तंत्रों से भू पर जीव नियति प्रतिपालित ?
किन मूल्यों से जीवन की इच्छा परिचालित !
किन आदर्शों से मानव भविष्य हो शासित ?
किस प्रकार हो विश्व सभ्यता संस्कृति विकसित ?

रहस स्पर्श से अब अनजाने
होता रह रह हृदय उच्छ्वसित !
किसी रंगिणी का चल अंचल
उड़ता मलयानिल में पुलकित !
रंग भावना से अंतर की
हो जाता सहसा जग रंजित,
स्वप्नों की पंखड़ियाँ हँस हँस
नयनों को कर देतीं विस्मित !

(३)

स्वर्ण मंजरित आम्र कानन,
कोकिला करती कल कूजन !
सूँघ चख चूम फूल आनन,
झूम मधुलिह् भरते गुंजन !
आज भव वारिधि उद्वेलित
नभो नीलिमा बनी विस्तृत;
डोलता मारुत रोमांचित
साँस पी फूलों की सुरभित !
रजत किंकिणियों सी कल कल
लहरियाँ थिरक रहीं चंचल,
कँप रहीं वल्लरियाँ कोमल
खोलतीं कलियाँ वक्ष नवल !

रंग प्राणों का स्वर्णिम लोक
कहाँ था यह अदृश्य चुपचाप,
हँस उठा, इन्द्रधनुष में आज,
हृदय का छाया वाष्प कलाप !
बज उठा जीवन में मधु छंद
किसी की सुन नीरव, पद चाप,
भाव गरिमा से भरा अनंत
मुखर स्वर से अब मौनालाप !

युवक नव युवति विचरते आज,
मर्म में स्पृहा, दृगों में लाज;

नहीं कैशोर भीति का भाव,
आज उनसे चरितार्थ समाज!
बने वे नर नारी मोहन,
न अब जीवन रहस्य गोपन;
न परियाँ देतीं शिशु को जन्म,
सृष्टि में निहित जनन पावन!

नीलिमा क्यों नीरव निस्तल,
स्रवंती बहती क्यों कल कल,
ज्ञात अब, खिलते क्यों कुड्मल,
गंधवह फिरता क्यों चंचल!

न रोके रुकते चपल नयन,
मीन तिरते, उड़ते खंजन;
अधर से मिलते मधुर अधर,
मुग्ध कलि अलि करते चुंबन!
बाँह यदि भरतीं आलिंगन
लताओं से लिपटे तरुगण;
प्रबल रे फूलों का बंधन,
अमिट प्राणों का आकर्षण!

आज भ्रू लतिकाओं में भंग,
प्रतनु तन-शोभा प्रीति तरंग;
गढ़े किस शिल्पी ने ये अंग,
निछावर निखिल प्रकृति के रंग!

स्पर्श में बहती प्राण तड़ित
स्वतः तन हो उठता पुलकित,
हृदय स्वप्नों से जग; रंजित
उषा अब इन्द्र धनुष वेष्टित !

सहज चार आँखें होतीं, अपलक रह जाते लोचन,
नव प्रवाल अधरों में बहती मदिरा ज्वाला मादन !
प्राणों की चिर चाह फूट बनती पुलकों के बंधन,
कौन भूल सकता है रे नव यौवन का सम्मोहन !
कैसे उर कामना स्वर्ण कलशों में युगल गई भर,
कहाँ नयनिमा ने पाए ये फूलों के मादक शर ?
यह लज्जा सज्जा सुषमा मधुरिमा कहाँ थी गोपन,
नव यौवन औ' प्रथम प्रणय औ' मुग्धा तरुणी का तन !

कौन बाँध सकता उद्दाम अजस्र वेग निर्झर का,
कौन रोक सकता अबाध उद्वेलन रे सागर का !
मदोन्मत्त यौवन का, मेघों का दुर्धर आलोड़न,
चकित नहीं कामिनी दामिनी करती किसके लोचन !

सरित पुलिन अब लगते शोभन,
बह जाता धारा के सँग मन !
मधुर, मौन संध्या का आँगन,
प्रिय, स्वप्नो में शयित निशि गगन !
गुंजन कूजन गंध-समीरण
सब में मर्म मधुर संवेदन;

तरुण भावनाओं से रंजित
मुकुलित नव अंगों का उपवन !
स्वर्ण नील भृंगों से झंकृत, कोकिल स्वर से कीर्तित !
अपलक रत्न-स्वप्न मधु वैभव मन को करता मोहित !
ताराओं से शत लक्षित, ज्योत्स्ना अंचल में वेष्टित
उदय हृदय में होता फिर फिर लेखा शशि मुख परिचित !
शरद निशा आती सलज्ज मुग्धा सी शंकित,
मुक्त कुंतला वर्षा तनु चपला सी कंपित ;
सुरभित ऊष्मा बेला कलि स्रक् से उर दोलित,
लिपट मधुर हिम जाती तन से आतप सी स्मित !

खुल पड़ता उर का वातायन
बहती प्राण मलय चिर मादन,
कहीं दूर से आता भीतर
प्रणयाकुल पंचम पिक गायन !
आओ हे चिर स्वप्न सखी, आकुल अंतर में आओ,
फूलों की नव कोमलता में जीवन को लिपटाओ !
इन प्रिय स्नेह सरों में अपलक शरद नीलिमा जागृत,
चपल हंस पंखों से चुंवित सरसिज श्री वरसाओ !
इस प्रवाल के प्याले की मधु मदिरा, सखि, उर मादन,
तुहिन फेन सी सस्मित प्रीति सुधा निज मुझे पिलाओ !
सुरभित साँसों के उर में कर मर्म कामना दोलित
फूलों के मृदु शिखरों पर प्राणों के स्वप्न सुलाओ !

इन मांसल सुवर्ण झरनों से लिपटीं विद्युत् लपटें,
प्रणय उदधि में प्राणों की ज्वाला को अतल डुबाओ !
लेटा नव लावण्य चाँदनी सा बेला के वन में,
खिलती कलिकाओं की शोभा कोमल सेज सजाओ !
स्वप्नों की पी सुरा आज यौवन जागे विस्मृति में
चंचल विद्युत् को सलज्ज ज्योत्स्ना के अंक लगाओ !
आओ हे प्रिय स्वप्न संगिनी, आकुल उर में आओ !

पति पत्नी अब बने प्रणयिजन,
निखिल प्रकृति करती अभिनंदन !
अह, कैसा निष्ठुर निर्मम जग
सन्मुख क्यों जीवन संघर्षण !
हृष्ट पुष्ट नव युग्मों का तन,
रुधिर वेग में झंकृत जीवन !
आत्म भाव से विस्तृत लोचन,
शौर्य वीर्य से विकसित नव मन !

नहीं मानता उर दुविधाएँ बाधा बंधन,
वह विशंक, निर्भीक, सह्य उसको न नियंत्रण !
चिर अदम्य उत्साह हृदय में स्पंदित प्रतिक्षण,
यह यौवन की आशा अभिलाषा का प्लावन !

अह, क्या करती रहीं पलित पीढ़ियाँ आज तक,
रक्त पंक जन धरणी का इतिहास भयानक !
रोग शोक, मिथ्या विश्वास, अविद्या व्यापक,
नंगे भूखे लूलों का जग हृदय विदारक !

कौन रहे इस क्रूर सभ्यता के संस्थापक,
यह जन-नरक कलंक मनुजता का, भू पातक !

बदलेंगे हम चिर विषण्ण वसुधा का आनन
विद्युत् गति से लावेंगे जग में परिवर्तन !
क्यों न मंजरित युवकों का हो विश्व संगठन,
नव यौवन आदर्शवादिता अरे न नूतन !
क्या करते ये धनकुबेर, पंडित, वैज्ञानिक,
दिशाभ्रांत क्यों हो जाते राष्ट्रों के नाविक !
ज्ञात नहीं क्या लोक नियति है आज भू पथिक,
वर्ग राष्ट्र से लोक धरा का श्रेय है अधिक !
दिवस ज्योति सा सार सत्य यह गोचर निश्चित
मनुष्यत्व है रीति नीति धर्मों से विस्तृत !
संस्कृति रे परिहास, क्षुधा से यदि जन कवलित,
कला कल्पना, जो कुटुंब-तन नग्न, गृह-रहित !

आओ, मुक्त कंठ से सब जन
भू मंगल का गावें गायन,
वंदे मातरम् !
जन धरणीं जन भरणीं
रत्न प्रसवनीं मातरम् !

नृत्य हरित पिक कूजित यौवन,
अनिल तरंगित उदधि जल वसन,

ज्वलित सूर्य शशि छत्रं नत गगन,
प्रणयाकांक्षी स्वर्ग चिरंतन,
वंदे मातरम्!
बजे क्रांति तूरी जग मादन,
कुडुम कुडुम हो जय दुंदुभि स्वन,
जीवन हित मानव वरे मरण
मृत्यु अंक में भी गावें जन,
वंदे मातरम्!
जाति वर्ण के टूटें बंधन,
रूढ़ि रीति से मुक्त बनें मन,
दैन्य दुरित के हटें तमस घन,
स्वर्ण प्रभात जड़ित गृह प्रांगण!
वंदे मातरम्!
दिशा लोक श्रम से हों हर्षित,
काल विश्व रचना में योजित,
भव संस्कृति में देश हों ग्रथित,
जन संपन्न, जगत मनुजोचित,
वंदे मातरम्!

ग पात के मौर न अब, फूलों की ज्वाला के वन,
नने चुंबे अरे धरती पर, झंझा का भव कानन!
ो फलों से जीवन डालें, रस में सब रँग गोपन,
व प्रकृति का रे अपार अक्षय वैभव दिङ् मोहन!
की रज को कर कृतार्थ बीता निदाघ अब भीषण,
म कणों से सींच सिन्धु पल्लवों से वाष्पों के घन!

तप्त श्वास सा ग्रीष्म पवन भी शांत हुआ झुलसा तन ,
विकसित वर्धित परिणत कर पुष्पित वसंत का यौवन !

वर्षा आई, धूम्र नील नभ में छाया घन घर्षण ,
तीव्र लालसा तड़ित जगी सोई, कर गर्जन तर्जन !
मधु मरंद से रंजित भू का गर्भ हुआ फिर उर्वर
नव प्रवाल प्रज्वलित तरु क्षितिज बना गाढ़ श्यामलतर !
नृत्य तरंगित हुए स्रोत नव, गए प्ररोह नवल भर ,
सृजन शक्ति ने अणु अणु में ज्यों लगा दिए जीवन पर !
प्रणय गीत औ' जनन स्वरों से मुखरित हुआ दिगंतर ,
जीवन की रिमझिम अजस्र रे संसृति की सावन झर !

पृथक् न अधिक रहा नारी जग
धरे पुरुष के सँग उसने पग ,
रंग तरंगित जिसकी श्री से
कुसुमित सुषमित जग का मरु मग !
गुड़ियों के सँग प्रिय किशोर क्षण
बीते उर में भर मृदु कंपन ,
खींच कुसुम धनु तन, यौवन ने
किया रूप सम्मोहन वर्षण !

वक्ष श्रोणि ने वढ़, कटि ने छँट
सौष्टव रेखाएँ कीं रूपित ,
मुग्ध नयनिमा, त्रपा लालिमा ,
पद जड़िमा ने तरुणी चित्रित !

शोभा कँपती लहरों सी उठ
हुई देह तनिमा में स्तंभित,
देख मुकर सी त्वक् में निज मुख
रही मधुरिमा छवि से विस्मित!
सुकुमारता व्रतति सी बढ़कर
अंगभंगि में हुई प्रस्फुटित,
सुंदरता ही प्रीति तूलि से
बनी मोहिनी प्रतिमा जीवित!

हुए रूपसी के नव अवयव
यौवन के आतप से विकसित,
मधुर स्त्रीत्व में धातृ कल्पना
सृजन कला के कर से मूर्तित!
जगा सलज चेष्टाओं में अब
नव लीला लावण्य अकल्पित,
पलक भृकुटि अंगुलि चालन में
छवि की दीप शिखाएं कंपित!

तिमिर ज्वाल सा केश जाल घन
पृष्ठ देश पर हुआ प्रज्वलित,
आभा जीवी नयनों को कर
कोमल शोभा-तम से मोहित!
स्वप्नों से गुंफित यमुना जल
गाढ़ नील ज्यों हुआ तरंगित,

साँसें लेते फूलों के रँग
सौरभ की कबरी में दोलित !

कांचन सी तप ज्वलित कामना।
ढली सघन जघनों में दीपित,
बनी कठोर कुसुम कोमलता
श्रोणि भार में हो चिर पुंजित !
बाहु लताएं फूल पाश बन
पुलकों में हो उठीं पल्लवित,
कोमल करतल चंचल पदतल
जीवन के पावक से रंजित !

रूप शिखा की श्री सुषमा से
हुए गेह आँगन आलोकित,
वातायन में उदित शशि कला,
गृह गृह के गवाक्ष चिर शोभित !
कलि कुसुमों ने भूतल को रंग
किया शोभना के हित सज्जित,
उर की साँसों में बहने को
बना समीर गंधवह सुरभित !

ज्योत्स्ना सकुची, उषा लजाई,
रहीं तारिकाएँ ज्यों विस्मित,
स्रोत बहे, सरसी लहराई,
निखिल प्रकृति श्री हुई प्रभान्वित !

हृदयासन पर बिठा प्रेम ने
किया अमर स्वप्नों से पूजन,
समा स्वर्ग ने स्वर्ण घटों में
स्वीकृत किया मर्त्य सुख बंधन!

दो टुकड़ों में सिमट नीलिमा
रही मौन नयनों में अपलक,
लजा अधर नव प्रणय वचन से
गए लालिमा से दुहरे रँग!
खिलती कलियों ने मार्दव भर,
कोकिल ने दे गीत स्रवित स्वर,
मोहक उसे किया ज्योत्स्ना ने
गोपन लज्जा में वेष्टित कर!

मधु ने फूल ज्वाल से आवृत,
किया शरद ने लेखा मुख स्मित,
मणि मुक्ता भृत खनि सागर ने,
भू ने स्वर्ण रजत से झंकृत!
जगा हृदय में प्रीति दर्प नव
मान नत नयनों से हो लक्षित,
हाव भाव में मधुर संयमन
शोभा नत लज्जा से संवृत!

तड़ित गर्भ, सुरधनु कबरी घन
ज्यों कृतार्थ होता भू पर झर,

मधुर अप्सरा वनी जनी अब
कुल प्रदीप से ज्योतित कर घर!
मातृ स्नेह वरसा नव शिशु पर
मुग्ध प्रणयिनी हुई निछावर,
सहधर्मिणी आज वह प्रिय की
सुख दुख की मंत्री, चिर सहचर!

जननि जनक अब बने युग्म, जीवन को दे नव जीवन,
देख तनुज मुख आत्म भाव में हुआ गूढ़ परिवर्तन!
जीवन का अमरत्व हुआ प्रत्यक्ष, पुरातन नूतन,
नित्य स्वप्न यौवन का सत्य हुआ, अवचेतन चेतन!
अंतरतम में आंदोलन, भावों में जागा मंथन,
धूम हट गया, मूर्तिमान हो उठे कार्य औ' कारण!
केन्द्र बन गया शिशु, ममत्व ने किया मूर्त तन धारण,
विस्तृत हुआ अहम्, निजत्व ने दुहराया नव जीवन!

अह, समानता जड़ जग की, मैं हूँगा निखिल विलक्षण,
इन्द्रधनुष स्वप्नों का जीवन नीड़ रचूँगा मोहन!
हम तुम होंगे, प्रिये, असाधारण, कहता था जो मन,
आत्मनिष्ठ वह यौवन सीख रहा अब आत्म समर्पण!
जीवन इच्छा, जीवन स्थितियों में विरोध क्या शाश्वत?
दोनों में ज्यों समाधान अब खोज रहा मन उद्यत!
बढ़ा युग्म दायित्व, आज जीवन घर में अभ्यागत,
बने उरोज पयोधर, दंपति जगत कर्म में अब रत!

चूम चूम शिशु का मुख पाते तृप्ति अमृत मदिराधर
मधुर प्रणय का कुंज बना गृह क्रंदन कलरव से भर
मलयानिल आ नवल मुकुल मुख का करती अब चुंबन
सुधा स्पर्श शशि की किरणें अभिनव ही का अभिनंदन
भूल गया ज्यों प्रणय कलह मन ,
गूँज उठे उर के अरसिक क्षण ;
मूर्त पीठ पा मर्म स्पृहा ने
पुत्र स्नेह बन किया अवतरण !

रूप रंग का रच सम्मोहन
सृजन शक्ति ने बाँधे थे मन ,
पलकों में शर, पुलक में तड़ित ,
अधरों में धर मदिरा मादन !
अब शिशु के अनुपम आनन में
अतुल स्वर्ग का भर आकर्षण ,
परंपरा में गूँथ, अमर ज्यों
बना दिया उसने भंगुर तन !

नहीं गणित से रे परिचालित
मानव जीवन का विकास क्रम ,
विजय पराभव संधि क्राति का
स्रवण शील मानव मन संगम !
मरती रहती बाह्य चेतना
आत्मा फिर फिर जगती नूतन ,

छोड़ जीर्ण केंचुल, नव सर्पित
होता उरग मनुज का जीवन !

(४)

शांत रे ज्वलित तड़ित नर्तन ,
शांत अब धूम मेघ गर्जन !
शांत चिर प्राणों का आवेश
बरस भू पर भर नव जीवन !

आज शुचि सौम्य शरद आनन ,
नीलिमा नत निर्धूलि गगन ;
चेतना सी ज्योत्स्ना से मुक्त
दुग्ध प्लावित जग के दिशि क्षण !
स्वच्छ आदर्शों से सरि सर ,
मनोदृग सी स्मित कुँई सुघर !
कृतांजलि अब प्रभात के पद्म ,
प्रौढ़ता का भव रहा निखर !

रूप रंगों का चित्र जगत
सिमट, धुल, हो अनुभव अवगत ,
विचारों भावों में परिणत
नियम चालित लगता संतत !
भिन्न रुचि प्रकृति नहीं कल्पित ,
एकता में वे आलिंगित ,

विकर्षण आकर्षण से नित्य
हो रहा जग जीवन विकसित !

नव कुमार का पकड़ मृदुल कर
टहला रही जनी आँगन पर,
विस्मय औ' कौतूहल से भर
पूछ रहा वह प्रश्न प्रश्न पर !
कैसी हो किशोर की शिक्षा
हृदय पिता का अब चिन्तनपर,
प्रिय अबोध चरणों में जग के
काँटे गड़ न जाँय, वह कातर !

लाड़ प्यार भय वर्जन में बढ़
पाँच बरस का अब प्रिय बालक,
युवति युवक का प्रौढ़ शिशु हृदय
स्वतः सृष्ट जीवन संरक्षक !
घर आँगन पड़ोस बच्चों के शिक्षक सतत अपरिचित,
रहन सहन में जीवन शोभा अभी न भू के दर्शित !
क्यों न बने घर घर किशोर के हित जीवित विद्यायन,
देवालय जग, जन मन दीपों से जीवन नीराजन !

ज्योति वृत्तियों से मानव की शैशव उर हो संस्कृत,
मूर्तित सामाजिक गरिमा से हो तारुण्य प्रभावित ;
अह, प्राणों के स्वप्न आज यौवन शय्या पर मूर्छित,
मनः स्वर्ग हम भू जीवन में कर पाए न प्रतिष्ठित !

पक्व हो चुके वे जग का हिम आतप सहकर,
मोहित जीवन फल चख, तिक्त मधुर रस से भर!
भ्रमण कर चुके भू के जन कुसुमित देशांतर,
विविध लोक संपर्कों से अब विकसित अंतर!

भू में आज विभव अपार दारिद्रय अपरिमित,
ज्ञान अखंड, असंख्य अविद्या तम से पीड़ित!
साधन विकसित, जीव क़ामना क्षुधित निरावृत,
रोग ग्रस्त मन, जीवन विषम, मनुज आत्मा मृत!
धरा वक्ष राष्ट्रों के कटु स्वार्थों से खंडित,
उन्नत स्वर्ण कलश देशों के विष परिपूरित!
गगन सिन्धु भीषण रण चीत्कारों से नादित,
मनुष्यत्व भौतिक वैभव से आज पराजित!

जाति वर्ण वर्गों में मानव जाति विभाजित,
अर्थ शक्ति से रक्त प्राण जन गण के शोषित!!
जीवन मंदिर में यंत्रों की मृत्यु प्रतिष्ठित,
मानव के आसन पर दानव मुख अभिषेकित!
क्षुद्र आत्म-रत मध्य वर्ग कृमि व्यूह सा घृणित,
अर्थ दस्यु रे उच्च वर्ग धन मद उत्तेजित;
वक्ष प्रीति का धृष्ट काम के कर से मर्दित,
अहम्मन्यता, अंध लालसा से भू कंपित!

विधि ने ऐसा विषम विश्व, अह, किया क्यों सृजन,
यह क्या प्रकृति विधान कि मानव कृत संघर्षण!

रिक्त सुरा का बुद्बुद सा क्षण भंगुर जीवन,
चिर विमर्ष निर्वेद ग्लानि से भर जाता मन!
किसका उर रे जग के कटु घातों से वंचित?
जीवन का पी तिक्त तप्त विष कौन न मूर्छित!
किसका दर्प न पद मर्दित? आशाएं लुंठित?
पार कर सका माया का पुल कौन अकलुषित!

धूप छाँह यह जग, आशा में घुली निराशा,
राग द्वेष सुख दुख सँग बँधी अमिट अभिलाषा!
विरह मिलन संघर्ष शांति जग की परिभाषा,
जन्म मरण रुज् जरा ग्रथित रे जीवन श्वासा!
पाप पुण्य औ' मिथ्या सत्य जगत में गुंफित,
ज्योति तमस द्वन्द्वों से निश्चय संसृति निर्मित!
यहाँ कुरूप सुघर, साधारण, पूज्य तिरस्कृत,
धनी दीन, भोगी त्यागी, औ' मूढ़ विपश्चित!
सच है, जग में सुख से अधिक दुःख ही निश्चित,
घृणा प्रेम से, दैन्य विभव से कहीं असीमित!
प्रतिभा से आडंबर, दर्प विनय से पूजित,
संस्कृति ज्ञान कला कोने में पड़ीं उपेक्षित!

जगत जीवन के कुछ अभ्यास
बन गए अब उर के विश्वास;
सद् असद् सदाचार व्यवहार
लिपट प्राणों से गए उदास!

व्यक्ति जीवन, जग जीवन भिन्न,
प्रार्थना में मिलता आश्वास;
आज बहिरंतर जग के मध्य
दीखता अमिट विरोधाभास!

मध्य बिन्दु क्या बहिरंतर का? भव क्या प्रगति निरंतर?
क्या हूँ मैं, क्या जग, क्या जीवन? क्या कुछ इनसे भी पर?
सदाचार क्या धर्म? जगत में क्यों हैं विविध मतांतर?
क्या है मिथ्या सत्य? मान जीवन के जिन पर निर्भर?
दृश्य जगत औ' मन से पर क्या आत्मा नित्य, अगोचर?
विकसित हुआ स्वयं यह भव, या इसका स्रष्टा ईश्वर?
क्या जड़, क्या चेतन? मंथित अब जिज्ञासा से अंतर,
विद्युत् सी हो स्फुरित प्रेरणा देती ज्यों कुछ उत्तर!

चेतना रे जिनकी विस्तृत
हृदय में उनके अथक प्रयास,
किस तरह बने मानवोचित
जगत जीवन अश्वत्थ निवास!

तरुण जीवन का वाष्प प्रसार
तथ्य बूँदों में आज गलित,
व्यक्ति गत जीवन का वैराग्य
हो रहा उर में शनैः उदित!
लोक सेवा में जीवन पुष्प
चाहता मन करना अर्पित,

आज करुणा विदीर्ण अंतर
दीन आर्तों को देख द्रवित !

विषमता के निर्मम पद से
फूल जो जीवन के मर्दित,
अभावों के असुरों ने चूस
कर दिया जिनको जीवन्मृत ;
सतत उत्पीड़न शोषण से
बने जो विकृत गर्ह्य दूषित ,
हुई कटु घातों से जग के
सहज श्रद्धा जिनकी कुंठित !

हृदय सोचता कैसे उनका मिटे कदर्य पराभव,
कैसे हँसें दिगंत धरा के, मानव हो फिर मानव !
ओ धरती के आर्त त्रस्त जन, कहता ज्यों कातर मन,
मत खोओ विश्वास हृदय का, मत खोओ मानवपन !
अश्रु स्वेद औ' रक्त से सनी भू की गाथा निश्चित,
पीड़न शोषण संघर्षण से करुण सभ्यता निर्मित !
मानव भू देवता, दलित, लुंठित, ओ जग के लांछित,
कलुष कालिमा के भीतर हो रही चेतना विकसित !
सामाजिक जीवन से कहीं महत् अंतर्मन जीवन,
वृहत् विश्व इतिहास, चेतना गीता किंतु चिरंतन !
भर देगा भूखी धरती को अंतर्जीवन प्लावन,
मनुष्यत्व को करो समर्पित खंडित मन, कवलित तन !

तुच्छ नहीं समझो अपने को, तुम हो पृथ्वी वासी,
फिर तुम भारत वासी जो, वसुधैव कुटुम्ब प्रकाशी ;
देखो, मा के अंचल में जो रत्न बँधा अविनाशी,
जगत तारिणी भरत भूमि, वह नहीं भिखारिन, दासी !

आँसू क्षण- अनुभव से हँसकर
धोते जीवन के रुधिर चरण,
हृदय ताप संगीत बन मुखर,
गाता विरत प्रीति का गायन !——
जग के दीनो दुखियो, एक कंठ हो गाओ,
बधिर श्रवण को वृथा न दुख की कथा सुनाओ !
किसे रुचेगी राम कहानी निर्मम जग में
काँटे बोता है जब मनुज मनुज के मग में !
तुम हो दुख के धनी, मनुज का दुःख बँटाओ
कुतर भाग्य के पंख, उड़ो हे हृदय गगन में,
धोओ मानव के विक्षत पग जीवन रण में ;
लघु ममत्व की वेलि निखिल जग में लिपटाओ !
मनुज नियति यह, पीड़क मनुज, मनुज ही पीड़ित,
यह विकास की गति, मानव उर होगा विस्तृत ;
नव जीवन के अग्रदूत तुम, जो उठ पाओ !

ध्वंस एक युग, धूलि धूसरित नव युग का तन,
आज मनोजग में केवल संघर्षण, क्रंदन ;
मोह विगत का तज, नूतन को मूर्त बनाओ !

अंध लालसा लोभ घेरते मानव का मन,
तुम हो रिक्त, बने मनुजत्व तुम्हारा चिर धन;
द्वेष घृणा की रज में प्रेम त्याग बो जाओ!
जो अपने में सीमित, मरते रहते प्रतिक्षण,
जग के प्रति जीवित, करते चिर मृत्यु का तरण;
खोल मरण के द्वार, अमर प्रांगण में आओ!
क्षण भंगुर यह तन, आत्मा रे मुक्त चिरंतन,
ईश्वर जग में व्याप्त, त्याग से भोगो भव जन;
यह चिर परिचित भारत स्वर, फिर इसे जगाओ!
जग के दीनो दुखियो मुक्त कंठ हो गाओ!

देख वत्स का अकलुष आनन
हृदय रक्त कर उठता नर्तन;
विश्व चेतना का आकर्षण
युक्त सृष्टि से कर देता मन!
शाश्वत का पा स्पर्श अपरिचित
डूब स्वांत का जाता क्रंदन,
उर का चिर तारुण्य फूट कर
नित्य जगत का करता सर्जन!
मुक्त सृजन-आनंद हृदय में
हो उठता अज्ञात तरंगित,
जीवन का अमरत्व सनातन
मुग्ध दृष्टि को करता विस्मित!

निश्चय ही यह जग शाश्वत सुख का चिर दर्पण,
मनुज नियति रे यह कटु सामाजिक संघर्षण;
सत्य, ज्योति, अमरत्व चाहता है अंतर्मन,
सुंदरता, आनंद, प्रेम,—वह शाश्वत का कण!

जग वैषम्यों को जीवन गति में कर निखिल समन्वित
मानवता को शाश्वत की आकृति में होना विकसित!
खंड युगों की संस्कृति को भव संस्कृति में एकीकृत,
धरती के आहत तन मन को होना शोभित ज्योतित!
नव संतति की शिक्षक होंगी नव भव स्थितियाँ निश्चित,
दैन्य द्वेष नैराश्य ग्लानि से होंगे वत्स अपरिचित;
मातृ वत्सला सत्ता से होंगे जनगण प्रतिपालित,
विकृत रुग्ण कवलित होंगे मानवता से संरक्षित!

सस्मित होगा धरती का मुख,
जीवन के गृह-प्रांगण शोभन;
जगती की कुत्सित कुरूपता
सुषमित होगी, कुसुमित दिशि क्षण!
विस्तृत होगा जन मन का पथ
शेष जठर का कटु संघर्षण,
संस्कृति के सोपान पर अमर
सतत बढ़ेंगे मनुज के चरण!

विशद चेतना ही सत्ता का कर सकती परिचालन
जन जिसके अगणित अवयव, संस्कृति केवल संचित मन;

भूत भ्रांत मानव को निश्चय बनना अंतर्लोचन,
सत्य अखंडित, युगपत् बढ़ते रे बहिरंतर जीवन !
रवि की आभा ज्यों शशि उर में होती बिम्बित,
प्रौढ़ बुद्धि में शनैः विश्व मन हुआ प्रवाहित !
जीवन सज्जा अब न चित्त करती आकर्षित,
रूप रंग पंखों में सत्य हृदय जो स्पंदित !

क्षेत्र बना मानव के मन को
करते मंगल सृजन विश्वमय,
स्पंदित शत मानस यंत्रों से
होता ज्ञानोदय का संचय !
मुक्त, सर्वगत हो विकसित मन,
करता जीवन पर्यालोचन,
अमृत हास्य ला शाश्वत मुख का
भर देता नव जीवन प्लावन !

नहीं क्षुधा औ' काम मात्र से
हुई लोक संस्कृति रे विकसित,
मानव के देवत्व के लिए
विश्व पीठ जीवन की निर्मित !
चीर काम का तमस आवरण
होगी स्वर्गिक प्रीति अगुंठित,
मृन्मय मानस दीपक होगा
अमर चेतना लौ से दीपित !

जीवन के स्वर्णिम वैभव पर
आत्मा का अवतरण प्रतिष्ठित,
मनुष्यत्व के मुख मंडल पर
शाश्वत अंतर आभा शोभित !

(५)

शेष पथ : श्वसित शिशिर की वात,
शिला शीतल प्राणों का ताप ;
गिर रहे पीले जीवन पात
विरस क्षण, सिसक, खिसक चुपचाप !
अस्थि पंजर अब जग की डाल
भर रहीं हिल हिल ठंढी साँस !
कुहासे में स्मृति के आवृत
विगत यौवन के चल मधुमास !
भूल फूलों के आलिंगन
वात हत लतिका भू लुंठित,
न अब वह गुंजित तरु जीवन,
न जीवन संगिनि ही परिचित !
न वह मधु रस न रंग गुंजार,
धूलि धूसर गंभीर दिगंत,
फूल फल, रच भव स्वप्न असार,
बीज में लय फिर हुआ अनंत !

दृगों में हँसते जीवन अश्रु,
कमल में ज्यों हिम जल थर् थर्!
शांत नीरव आत्मिक संतोष
गया भव क्लांत हृदय में भर!
रूप रंगों की मांसल देह
तीलियों की अब त्वक् पिंजर,
गूढ़ नि:शब्द गिरा में लीन
मुखर खग के अंतर्मुख स्वर!

चल रहा झुक लाठी पर आज
वृद्ध, जीवन के प्रति साभार,
छोड़ चेतन जड़ का अवलंब
करेगा मृत्यु द्वार फिर पार!
अकेला वह विशिष्ट रे पांथ,
न पथ के सँग यात्रा का अंत;
विश्व में रिक्त व्यक्ति का स्थान
नहीं भर सकता स्वयं अनंत!
मारता वह विनोद से आँख
देख नव युवति युवक को साथ,
झुर्रियाँ हँसतीं नीरद हास,
फूलता पेट, झूलता माँथ!

पक्व जीवन का फल वह पूर्ण,
तृप्त उर, चर्म रंध्र चरितार्थ;

खींच सकते न देह मन प्राण
विश्व प्राणों से सार पदार्थ !
व्यग्र रे अमृत अनिल में आज
व्याप्त होने को ज्यों क्षण श्वास ,
विकल उड़ने को खग, पर खोल ,
छोड़ भस्मांत देह तरु-वास !

पितामह : पलित काँस के केश ,
पुत्र औ' पौत्रों का अब घर ;
वधू अंचल में नव शिशु देख
सोचता कुछ तटस्थ अंतर !

सोच रहा वह, या मन की आँखों में-जगकर ,
सूक्ष्म जगत हो रहा स्वप्न के पट पर गोचर !
श्रांत इंद्रियों की निद्रा से जाग्रत अंतर
देख रहा, मैं जीवन की छाया से हूँ पर !
समदिक् जीवन से प्रिय ऊर्ध्व उसे अब जीवन ,
प्रीति मधुरिमा से प्रिय शिव औ' सत्य संचरण !
खड़ा द्वार पर जीवन के कंकाल सा मरण ,
मोह दिशा का मिटा, काल से शेष अभी रण !

क्या है मृत्यु ? गहन अंतर में
उठता रह रह प्रश्न भयानक ,

शेष वहीं होजाएगा क्या
जीवन का करुणांत कथानक !
खुलते हैं स्मृति के पट पर पट
विगत दृश्य होते क्षण गोचर,
स्वप्न चित्र से वर्ष आयु के
उड़ते धूमयोनि से नभ पर !

अह, तृष्णा के वाष्पों की क्या
माया यह भंगुर जग जीवन !
सोया काल दिशा शय्या पर
स्वप्न देखता या क्या क्षण क्षण !
देह निधन का द्वार पार कर
आत्मा कहाँ करेगी विचरण ?
क्या जीवन की गोपन तृष्णा
केवल जन्म मरण का कारण !

आत्म मुक्ति के लिए क्या अमित
यह ग्रह ग्रथित रंग भव सर्जित ?
प्रकृति इन्द्रियों का दे वैभव
मानव तप कर मुक्त बने नित !
नहीं संत कुल हुआ संत रे
जीव प्रकृति के सब जन निश्चित,
लोक मुक्ति है ध्येय प्रकृति का
मनुज करे जग जीवन निर्मित !

तन से ही कर नव तन धारण
अमर चेतना करती सर्जन,
चेतन की भव मुक्ति के लिए
वाहन जड़ तन, मात्र न बंधन!
मुक्त सृजन आनंद को स्वतः
रूपों का नव बंधन स्वीकृत,
आत्मा जीर्ण वसन तज रज का
नव वसनों में होती भूषित!

आंशिक उसे लगा जीवन का
जड़ चेतन का बौद्धिक दर्शन,
जड़ चेतन से परे अगोचर
जीवन के हैं मूल सनातन!
अन्न प्राण मन आत्मा केवल
ज्ञान भेद हैं सत्य के परम,
इन सब में चिर व्याप्त ईश रे
मुक्त सच्चिदानंद चिरंतन!

तरुण रथी ने झेले बहु फूलों के शायक,
क्रांत दृष्टि वह रहा, विचारक, जनगण नायक;
अन्वेषक, शोधक, निज युग का भाग्य विधायक,
धर्म नीति दर्शन मंथन में अपर विनायक!
अब प्रसवित का हृदय बना निर्मम, भव कुंठित,
तर्क बुद्धि अनुभूति, चेतना-अमृत में द्रवित;

मुक्त हुआ वह सूत्र सृष्टि पट जिससे ग्रंथित,
व्यक्ति विश्व से, इंद्रिय मन से जो अतीत नित !
सहज चेतना से अब उसका हृदय प्रकाशित,
आतप सी वह, जिसे न भू रज करती रंजित !
शैशव यौवन शिशिर वसंत उसी में चित्रित,
शुभ्र किरण वह, जीवन इन्द्रधनुष में सर्जित !

आज समस्त विश्व मंदिर सा
लगता एक अखंड चिरंतन,
सुख दुख जन्म मरण नीराजन
करते, कहीं नहीं परिवर्तन !
ऊषा के स्वर्णिम गुंठन से
आभा अमर स्पर्श करती मन,
पदतल पर श्लथ जीवन छाया,
सन्मुख ज्योति देश अब नूतन !

पुण्य हरित भू का दूर्वादल
पाप ताप में सतत अकलुषित,
स्वर्ग चेतना सदृश उतर अब
उस पर खड़ी धूप ज्यों जीवित !
टूटी मन की जाग्रत निद्रा,
क्षीण अहम् का शशि छायानन,
विहगों के प्रभात कलरव में
मिलता शाश्वत लोक जागरण !

विनत पद्म संध्या आँगन में
मौन प्रार्थना, आत्म समर्पण,
ताराओं के स्तिमित स्वर्ग में
सोई अपलक शांति चिरंतन !

खुला गगन में आज मुक्त मन,
नीलि योनि में अब वह सुंदर,
आसन में केवल उसका तन,
अंतरतम में स्थित अब अंतर !

अटल शांति में भव संघर्षण,
अमृत अंक में जन्म औ' मरण ;
अतल अकूल चेतना सागर,
क्षुब्ध मात्र भव सलिल आवरण !

हुआ हृदय में स्फुरित अचानक
सत्य निखिल जग में जो व्यापक,
कहाँ देखता रहा वह अथक
क्या ? वह जिससे रे नित अपृथक !

वही तिरोहित जड़ में जो चेतन में विकसित,
वही फूल मधु सुरभि वही मधुलिह् चिर गुंजित !
वस्तु भेद ये : चिर अमूर्त ही भव में मूर्तित,
वह अज्ञेय, स्वतः संचालित, एक, अखंडित !

अध: ऊर्ध्व बहिरंतर उसके सृष्टि संचरण,
सांत अनंत, अनित्य नित्य का वह चिर दर्पण;
एक, एकता से न बद्ध, बहु मुख शिख शोभन,
सर्व, सर्व से परे, अनिर्वचनीय, वह परम!

उतर चेतना पुनः बनी मन
खुला रहस्य, सूक्ष्म पा दर्शन!
जगा दृष्टि में इन्द्र धनुष घन
वहिरंतर जग जीवन वितरण!
सप्त चेतना निर्झर भव में
शाश्वत अमृत कर रहे वर्षण,
स्फुरित दीप्त लोकों से भासित
स्वर्गंगा स्मित उर पथ गोपन!
सृजन शक्तियों से चिर ज्योतित
अंतर्मन का दिव्य चिद् गगन,
वहिर्जगत रंजित चेतन मन
मात्र चित्र छाया अवगुंठन!

लगा उसे युग युग से संचित
मनोद्रव्य से संस्कृति निर्मित,
नीति धर्म आदर्श जीर्ण मृत
जन समाज जीवन में गुंफित!
जाति वर्ण गौरव से पीड़ित
वर्ग राष्ट्र स्वार्थों में सीमित

जन समुद्र रे आज अचेतन
अंध प्रवेगों से आंदोलित !

नव मानों से हो जो कल्पित
पुनः लोक संस्कृति पट ज्योतित,
हो कृत काम नियति मानव की
स्वर्ग धरा पर विचरे जीवित !
भू पर जन सत्ता हो विकसित
अंतर्जीवन से संबंधित,
शिल्पी सी चेतना जागरित
करे नव्य मानव मन निर्मित !

मानव-का-देवत्व केन्द्र हो,
परिधि जगत जीवन हो विस्तृत,
जीवन का ऐश्वर्य अपरिमित
मानव ईश्वर को हो अर्पित !
बहिर्जगत के वैभव का मद
अंतर्मानव से हो चालित,
ऋत चित की आभा से चुंबित
मनुष्यत्व हो पूर्ण प्रस्फुटित !
वस्तु परिस्थिति हों मनुजोचित,
त्याग भोग का हो वर साधन,
रुचि स्वभाव वैचित्र्य से ग्रथित
जन जीवन लीला हो शोभन !

सृजन शील हो मानव चेतनं
मानवता में कुसुमित जीवन,
जग हित जीवन मधु हो संचित,
हो अलिप्त कर्मों से जन मन !

सर्व शक्तिमत्ता आत्मा की
जीव सृष्टि में बहुमुख विकसित,
रुचि अनुकूल विकास व्यक्ति का
श्रेयस्कर मानव समाज हित !
ज्ञानी कर्मी शिल्पी सैनिक
एक सत्य के अवयव निश्चित,
अंतर्पथ से निखिल चराचर
आत्मा के बल से संपोषित !

भू रचना का भूति-पाद युग
हुआ विश्व इतिहास में उदित,
सहिष्णुता सद्भाव शांति से
हों गत संस्कृति धर्म समन्वित !
वृथा पूर्व पश्चिम का दिग् भ्रम
मानवता को करे न खंडित,
वहिर्नयन विज्ञान हो महत्
अंतर्दृष्टि ज्ञान से योजित !

पश्चिम का जीवन सौष्टव हो
विकसित विश्व तंत्र में वितरित,
प्राची के नव आत्मोदय से
स्वर्ण द्रवित भू तमस तिरोहित !
लोक नियति निर्माण करें नव
देश देश के विवध विपश्चित,
राष्ट्र नायकों के सँग दुर्वह
राज कर्म में हों सक्रिय चित !

सर्वोपरि मानव संस्कृत बन
मानवता के प्रति हो प्रेरित,
द्रव्य मान पद यश कुटुंब कुल
वर्ग राष्ट्र में रहे न सीमित !
एक निखिल धरणी का जीवन,
एक मनुजता का संघर्पण,
विपुल ज्ञान संग्रह भव पथ का
विश्व क्षेम का करे उन्नयन !

दिव्य क्षेत्र हो जो भू जीवन
युक्त निखिल हों भू के मानव,
अंतर्जीवन का प्रवाह ही
भर सकता जग में समत्व नव !
नहीं दिव्यता स्वप्न कथा रे
वह अंतरतम में अंतर्हित,

सार तत्व वह मनुष्यत्व की
निखिल सृष्टि की गति में झंकृत !

विजातीय हो कलुष तमस दुख,
स्वजातीय देवत्व चिरंतन,
मानव तू शुक्रोसि स्वरसि
भ्राजोसि ज्योतिरसि, सत्य ऋषि वचन !
मानव के उर के मंदिर में
स्वर्ग प्रीति की शिखा प्रज्वलित,
है देवत्व धाम मानव का,
वह रे मनुज नियति, यह निश्चित !

नर नारी का रुद्ध हृदय ज्यों
आज स्वर्ग की लय से वंचित,
वे प्रभात के स्वर्णातप से
रज तन में न विचरते ज्योतित !
देह मोह, अधिकार प्रणय से
लोक चेतना भू की पीड़ित,
युवति युवक जीवन सागर में
नहीं प्रीति लहरों से दोलित !

क्यों मानव यौवन वसंत सा
हो न लोक जीवन में कुसुमित,

मधुर प्रीति हो सामाजिक सुख,
प्राण भावना आत्म संयमित!
करें मुक्त उपभोग हृदय का
नर नारी निज रुचि से प्रेरित,
आदर प्रीति विनय हो उर में,
अंग लालसा का मुख संस्कृत!

भावी संतति को दे मानव
पुण्य चेतना की हवि दीपित,
हो मौलिक संस्कार वधू का
जाग्रत, कृत्रिमता से कुंठित!
जाति प्रसू वह, स्वयं प्राकृतिक
वरण वृत्ति हो उसकी विकसित,
नर का पौरुष जगे, पुनः वह
द्रोही पशु हो मानव निश्चित!

हो प्रतीति परिणय प्राणों का,
कुल दीपक सुत भू के रक्षक,
नर नारी का लौकिक जीवन
यौवन आवेगों का शिक्षक!
हृदय-तमस आलोक-स्रोत पा
हो जीवन सौन्दर्य में द्रवित,
प्राण कामना सृजन शील बन
धरा स्वर्ग रचना में योजित!

आज पारिवारिक जग जीवन
अश्रु नयन कलहों से कवलित,
परिणय के अगणित पापों से
वद्ध मनुज चेतना कलंकित!
जव तक मानव हृदय देह के
नर नारी मानों में खंडित,
नहीं मानुषी रे वह संस्कृति,
वह सामाजिकता अभिशापित!

नर नारी का मुक्त हृदय हो
निकष प्रकृत संस्कृति का केवल,
अंकित उस पर शोभा रेखा
मनुष्यत्व की हो स्वर्णोज्वल!
जिस जगती की चित्र प्रकृति नित
शत ध्वनि वर्णों से सुख मुखरित,
वहाँ क्यों न कुसुमित अवयव जन
विचरें अंतः श्री से दीपित!
हँसता जहाँ अमर तारापथ
धरा नाचती श्वसित तरंगित,
वहाँ न क्यों मानव जीवन हो
प्रेम हर्ष आशा से स्पंदित!

दिखा उसे देवत्व सार मानव जीवन का,
पाप पुण्य सदसद् का जगत, जगत भू मन का!

गत जीवन की छाया से भू का मन आवृत,
निज अंतस्थ किरण से जनगण अभी अपरिचित !

वहिरंतर वैभव का हो जो विश्व समन्वय
रूपांतरित जगत जीवन हो, नव स्वर्णोदय !
मूल सत्य देवत्व मनुज का रे जो निश्चय,
दैन्य दुरित का मन तब केवल आत्म पराजय !
मानव को जो देव मान हम सोचें क्षण भर
गोचर तमस विकृति का कारण हो तब वाहर !
दिव्य उषा के लिए क्षेत्र जो रचें लोकगण
स्वर्ण किरण हँस धरे धरा पर ज्योति के चरण !

मन ने ज्यों दृग खोल किया जीवन को विकसित
आत्मा का संचरण करे मन को आलोकित !
प्रीति शिखा में भेद वुद्धि जल उठे प्रज्वलित,
ऊर्ध्व चेतना विचरे जग जीवन में मूर्तित !

दिखा उसे मानव भविष्य छाया सा चित्रित
मन से नहीं मनुज की भावी होगी निर्मित !
मानव के ईश्वर को नव जीवन अंगीकृत,
निकट क्षितिज में दिव्य मेघ वह उठता ज्योतित !
दीप भवन युग विद्युत् युग में ज्यों दिक् शोभित
मन का युग हो रहा चेतना युग में विकसित !
द्विधा बुद्धि में मनु न रहेगा अधिक विभाजित,
जन मन के अणु से होगी चिच्छवित प्रवाहित !

प्लावित करती शिशु अधरों को
अंतर की आभा स्मिति निश्छल,
वृद्ध सोचता किन स्थितियों में
शिशु को बढ़ना होगा प्रतिपल !
युग जीवन की रज को लिपटा
कैसा रंजित होगा वह मन,
जन्मों के किन संस्कारों का
उसके अंतर में आकर्षण !

अंतर्यामी पुरुष करेंगे
निश्चय उसका नव पथ ज्योतित,
पर सीमाओं का मानव मन,
कांटों का जग का मग कुंचित !

नहीं ज्ञान से होता अविकल
समाधान मानव के मन का,
व्यक्ति विश्व से ही रे केवल
है संबंध नहीं जीवन का !
गूढ़ रहस्यों के अभेद्य स्तर
जिन पर जीवन की गति निर्भर,
अवचेतन प्रच्छन्न मनस् का
निस्तल अविच्छन्न रे सागर !

वयस भार से झुका धनुष सा
पृष्ठ वंश : रेखांकित आनन,
दृष्टि क्षुधा निद्रा भी क्रमश:
शिथिल हुईं अब, मन्द स्मृति श्रवण !
प्रात: ब्राह्म मुहूर्त में स्वत:
खुल जाते यात्री के लोचन,
एकाकी अंतर करता तब
प्रभु से नीरव आत्म निवेदन !

हे जीवन आराध्य, हृदय वासी, हे मानव ईश्वर,
मंगलमय, तुम सर्व प्रथम अक्षय करुणा के सागर !
माता पिता पुत्र भार्या निज पर, जन्मों के सहचर,
विश्व योनि, तुममें अनादि से जग के निखिल चराचर !
आते जाते जन्म मरण वहु तन में शैशव यौवन,
आशाऽकांक्षा राग द्वेष मन में करते संघर्षण ;
नीति धर्म आदर्श विविध वनते जीवन में वंधन,
तुममें जगते दिशा काल, लय होते, देव परात्पर !

खोज निरंतर तुम्हें, अपरिमित महिमा से हो विस्मित,
नेति नेति कह बुद्धि मनुज की कब से प्रणत, चमत्कृत !
हृदय सुलभ तुम, सहज कृपा कर देती उर तम ज्योतित,
ज्यों पारस का परस अयस का रहस स्वर्ण रूपांतर !

सदसद् कारण-कार्य प्रकृति के केवल मात्र प्रयोजन,
देव, तुम्हारी अमित दया से होता भव का पालन ;

अशोक वन

भक्ति प्राण

श्री मैथिलीशरण जी गुप्त !

योग्य नहीं कुछ भेंट : आप चिर मैथिली शरण ,
गीत मैथिली के गा छूता स्नेह से चरण !
शैशव ही से रहा आप के प्रति आकर्षण
ललित भणिति का किया प्रीति वश चपल अनुकरण !

अमर भगीरथ आप, रसात्मक तृषा कर हरण
स्वरापगा का प्रथम कराया मधुर अवतरण !
सरस्वती से स्वयं आप का सुन वीणा क्वण
कर्ण बन गए जन के प्यासे जह्नु के श्रवण !

'सूर सूर तुलसी शशि...' लगता मिथ्यारोपण
स्वर्गंगा तारापथ में कर आप के भ्रमण !
स्वर्ण कलश कवि यश की यशोधरा निःसंशय ,
बसा गए साकेत, शिल्पि, नव आप चिरंतन ;
व्यथा कथा लिख गए गुप्त हृत्पत्र पर अभय ,
भारत नारी तीर्थ उर्मिला का उर क्रंदन !

उपक्रम

धरती में सोया था जीवन !

चिर निद्रा से जग, जड़ तम से
करना पड़ा उसे संघर्षण !

जीवन का था नव्य संचरण,
हुआ पुरातन में परिवर्तन,
कच्छ, वराह रूप धर उसने
प्रतिक्रिया मद किया विमर्दन !

धीरे, स्वप्नों में अँगड़ा घन,
जीवन शय्या पर जागा मन,
कटु विरोध सह, उसने सीखा
जीवन पर करना अनुशासन !

मन था देश काल से सीमित,
जीवन भंगुरता से पीड़ित,
तप कर वह जल उठा शिखा सा
दिव्य चेतना में भव मोहन !

इस प्रकार चित् शक्ति निर्वर्तित,
हुई जगत जीवन में विकसित,
मानव ने छूए असीम के
छोर, तोड़ सीमा के बंधन !

ज्यों ज्यों हुई चेतना जागृत
प्रभु भी जग में हुए अवतरित,
अंतर्मन में परिणत होकर
हुआ प्रतिष्ठित सत्य चिरंतन !

(१)

ध्यान मग्न बैठी वैदेही !

अपलक नील गगन तन तकती
ऊर्ध्व मना, वह कब थी देही ?

मर्मर क्या करता अशोक वन,
शत सहस्र युग करते क्रंदन,
निखिल प्रकृति, मृदु तृण, चलोर्मि, श्लथ
सुरभि, किरण नत उसके स्नेही !

कँपती तन पर छन तरु छाया
उर का द्वन्द्व उमड़ हो आया,
सूने लगते गृह आँगन वन,
राम बिना, जो त्रिभुवन गेही !

राम जानकी को बिलगा कर
उमड़ रहा दुख से भव सागर,
लहराती कण कण में आशा
धर्म सेतु प्रभु बाँधेंगे ही !

(२)

कैसा था वह परम पुण्य क्षण !

लता भवन से प्रकट हुए थे
जब दो भ्राता श्याम गौर तन !

ज्यों ज्यों हुई चेतना जागृत
प्रभु भी जग में हुए अवतरित,
अंतर्मन में परिणत होकर
हुआ प्रतिष्ठित सत्य चिरंतन !

(१)

ध्यान मग्न बैठी वैदेही !

अपलक नील गगन तन तकती
ऊर्ध्व मना, वह कब थी देही ?

मर्मर क्या करता अशोक वन,
शत सहस्र युग करते क्रंदन,
निखिल प्रकृति, मृदु तृण, चलोर्मि, श्लथ
सुरभि, किरण नत उसके स्नेही !

कँपती तन पर छन तरु छाया
उर का द्वन्द्व उमड़ हो आया,
सूने लगते गृह आँगन वन,
राम बिना, जो त्रिभुवन गेही !

राम जानकी को बिलगा कर
उमड़ रहा दुख से भव सागर,
लहराती कण कण में आशा
धर्म सेतु प्रभु बाँधेंगे ही !

(२)

कैसा था वह परम पुण्य क्षण !

लता भवन से प्रकट हुए थे
जब दो भ्राता श्याम गौर तन !

परम रूप प्रभु नव इन्दीवर,
ज्योति हंस लक्ष्मण पद अनुचर,
जाग्रत मानस में अनंत छवि
निद्रित जल में शांत स्मित गगन !

अमित नील ही प्रभु में नर तन,
शुभ्र शरद से निर्मल लक्ष्मण,
देख एक ही शोभा अपलक
दर्शन सूक्ष्म बनी चल चितवन !

खींच लिए प्रभु ने लोचन मन
खुले दृष्टि के भौतिक बंधन,
निज सीमा कर पार नयन ज्यों
भूल गए क्षर रूप विलोकन !

जगा मनोलोचन में तत्क्षण
विश्व श्याम तन आभा का घन !
छिपा, चेतना की छाया सा
दिशि पल में चित्रित जग जीवन !

सूक्ष्म राम ने प्रथम ज्यों चरण
धरे धरा पर, किया अवतरण,
पा सीतामय प्राण पीठ प्रिय,
भू के हृदय कमल को पावन !

(३)

वन की मर्मर क्या गाएगी ?

कहती वह शंकित स्वर में—क्या ,
किरण तिमिर में खो जाएगी ?

भस्म हो चुकी जो भू रज जल ,
उठी शिखा सी जो चिर उज्वल ,
जगी चेतना धरती की जो
वह, क्या भू पर सो जाएगी ?

पृथ्वी की पुत्री यह सीता
पृथ्वी जिससे हुई पुनीता ,
वह क्या आदिम भू जीवन के
छाया तम को अपनाएगी ?

छूकर चरण राम के पावन
बनी धरा प्रतिमा जो चेतन ,
वह चिन्मयी लिपट जड़ रज से
फिर क्या मृन्मय हो पाएगी ?

भूल गई जो तन, अपनापन ,
जिसके मन का बना राम तन ,
रूप गंध रस की मृत रज को
वह ज्योतित कर न उठाएगी ?

(४)

क्या अशोक वन है, क्या सीता ?
वह मुग्ध वैभव स्वर्ग, और यह
जन मंगल की मूर्ति पुनीता !

एक युगांत, रुद्र धनु खंडन,
कृषि युग सर्जन राम अवतरण,
जन मन धरती, जग जीवन कृषि,
संस्कृति कृषि श्री,—क्षितिजा प्रीता !

गत जीवन ममत्व ही धर तन
जन मन में था माया रावण,
मिटा धरा से उस विरोध को
सीता हुई अशेष गृहीता !

रावण था युग वैभव प्रतिमा,
अमित प्रताप, बुद्धि बल गरिमा,
युग आकांक्षा से अविद्ध वह,
जन मन मग्न, मही थी भीता !

जन आकांक्षा को था उठना,
पशु को उत्तर मनुज था बनना,
[illegible] को स्वर्ग-कथा से
होना था जग हित परिणीता !

अब आते महान परिवर्तन
[illegible] [illegible] [illegible] पर करते विचरण,

यह इतिहास मनो जीवन का,
सृजन विकास, चेतना गीता!

(५)

देवि सजा दूं फूलों से तन!
अवधि हो गई, आएँगे अब
लंकापति करने अभिवादन!
मंदोदरि के भेजे पावन
नंदन वन के पुष्प आभरण
दमक उठेंगे तन की छवि से
ज्यों शशि से रँग नवल शरद घन!
ये सुरगुरु के तोड़े शुचि फल
ग्रहण करो, हों पुनः ये सफल,
स्वर्ग पेय लो यह मृदु मादन,
करो सुधा से मुख प्रक्षालन!
लंका का यह शाश्वत मधुवन
देवि, तुम्हारी छवि का दर्पण,
नत चितवन, मृदु चरण, सहज स्मिति
बन जाते शत मुकुल तृण सुमन!
गंध-व्यजन पुलकित मलय पवन,
उठ उठ लहरें करतीं दर्शन,
तुम भूमिजे, धरा की शोभा,
क्या आश्चर्य प्रणत जो रावण!

... ...

चेरी त्रिजटा निर्निमेष मन
करती नित नीरव नीराजन,
ज्योति दृष्टि से हृदय कामना
उठकर दीप शिखा जाती बन!

(६)

शोभे, अभिनन्दन हो स्वीकृत,
लंकापति हो उपकृत!
पुष्पों से भी पेलव श्री तुम
पुष्प करूँ क्या अर्पित?

जिस अभिलाषा से जर्जर मन,
जिन स्वप्नों से अनिमिष लोचन,
जिस मद से रावण है रावण,
तुम्हें देख हो जाते प्रशमित!

त्रिभुवन में विश्रुत जो दानव
तुम्हें देख बन जाता मानव,
कौन मोहिनी तुम? रावण की
माया भी हो जाती मोहित!

दर्प दलित अब मेरा जीवन
विगत चेतना का पावक कण,
पा सुरमाया पवन, शिखा बन,
बुझने को हो उठा प्रज्वलित!

देख रहा मैं विस्मित लोचन
घेरे राम तुम्हें, आभा घन,
दीपक की निष्कंप शिखा तुम
अमित ज्योति मंडल से मंडित !

अखिल ज्ञान पूजन आराधन,
रण कौशल, त्रिभुवन वैभव धन,
मुझको लगता, सार हीन हैं,
यदि वे नहीं विश्व मंगल हित !

रावण को प्रिय नहीं नारि तन,
वह सुरांगनाओं का मोहन,
माया से भी कर सकता वह
पल में शत सीता तन निर्मित !

मुझे चाहिए, देवि, यह हृदय,
जिसमें निखिल सृष्टि का आशय,
प्रथम बार यह हृदय धरा पर
आज हुआ अवतरित कि विकसित !

(७)

क्या दूँ तुम्हें, रक्षपति, उत्तर ?
इस जग में वैदेही केवल
हृदय, राम केवल हृदयेश्वर !
धरती की आकांक्षा सीता
त्रिभुवन के पति से परिणीता,

भू पर उसके पद, भव में मन,
हृदय राम में लीन निरंतर !

सतत लोक मंगल में जो रत
भू का हृदय राम का अनुगत,
क्या तुम बाँध सकोगे उसको,
घट में समा सकेगा सागर ?

युग युग से विच्छिन्न जड़ावृत
जग जो शक्ति हुई फिर केन्द्रित,
क्या ममत्व के दोने में वह
ज्वाल रहेगी ? सोचो क्षण भर !

वही राम जो जीवों में क्षर
वे जीवों के परे परात्पर,
सीता से वे युक्त जगत से,
तुमसे, बनो जो कि प्रभु अनुचर !

हरा राम ने मोह निशा भय
उठा पंक से पद्म भू हृदय,
छोड़ो मोह निशाचर पति अब,
प्रकटे लोकोदय के दिनकर !

(८)

भुवन विदित मैं भू अधिकारी !
जीत सकेंगे मुझको राघव,
देवि, मुझे है संशय भारी !

सात्विक रघुपति रावण माया
नहीं जानते, क्या है छाया !
निखिल भुवन इस अचित् शक्ति की
सृजन शीलता पर बलिहारी !

धरा गर्भ का है गहरा तम,
जिसमें जीव रहे अविरत भ्रम,
क्षण क्षण के कटु संघर्षण से
उठी स्वर्ण की लंका सारी !

मानव वही रहेगा मानव
चढ़ा पीठ पर उसके दानव,
वही महीपति जो भुजबल की
बाँध सकेगा चारदिवारी !

रूप गंध रस शब्द कल्पना
यह ममता की नहीं जल्पना,
गाढ़ लालसा की मदिरा क्या
छोड़ सकेगा भूमि विहारी ?

मिट सकती जो मन की तृष्णा
होती धरा न सागर वसना,
सम्मोहन की रत्न छटा को
त्याग बनेगा कौन भिखारी ?

देवि, युद्ध से होगा निर्णय
किसका होगा धरणि का हृदय,

स्वप्न शयन माया का तजकर
बन न सकेंगे जन असिचारी !

(९)

पंचवटी की स्मृति हो आई !
नील कमल में, नील गगन में,
नील वदन ही दिए दिखाई !

संध्या की आभा में मोहन
पंचवटी उठ आई गोपन,
झूली सन्मुख, प्रिय सँग चौदह
बरसों की स्वर्णिम परछाँई !

कौन रहा वह सोने का मृग
जिसने मोह लिए मेरे दृग ?
जगी चेतना थी केवल, मैं
मन से राम न थी बन पाई !
भू संस्कार पुराने घेरे
उपचेतन मन को थे मेरे,
भू के गत जीवन की छाया
मन में थी प्रच्छन्न समाई !

विषय मोह मिस चेतन में जग
होना था मन से उसे बिलग,
माया मृग बन वह मरीचिका
ज्यों सोने का तन धर लाई !

... ...

जग जीवन सीता की काया,
जन मन से थी लिपटी छाया,
गत युग की लंका में उसने,
कर प्रवेश, नव ज्वाल लगाई!

ज्ञात भूमिजा को भू गाथा,
वह तापसी हरेगी वाधा,
आज हृदय स्पंदन में उसके
प्रभु ने जय दुंदुभी वजाई!

(१०)

राम दूत मैं, प्रभु पद अनुचर!
पहचानो, मा, राम मुद्रिका,
सूक्ष्म परिधि सी, त्रिभुवन भीतर!

जननि, तुम्हें नित निज उर में धर
पत्र पुष्प तृण पर करुणाकर
विरह व्यथा मिस अश्रु वहाते
मानव मन की दुर्वलता पर!

देवि, सकल ज्यों तृण तरु, खग मृग,
वने सर्वदर्शी प्रभु के दृग,
निखिल धरा में खोज तुम्हें वे
उत्सुक तरने को भवसागर!

समवेदना तप्त जन का मन
मात, हुआ अव जाग्रत पावन,

कौन मनुज की कहे, बने सब
प्रभु पद अनुचर उपनर, वानर !

राम नाम प्रभु से भी बढ़कर
बना आज जन मन का ईश्वर,
अखिल सृष्टि का सार तत्व वह,
स्वर्ग मुक्ति सोपान चिर अमर !

ले सँग शूर वीर नर वानर
प्रभु आएँगे पार द्रुत उतर,
मर्यादा का सेतु बाँधकर
चिर भव तृष्णा के सागर पर !

अग्नि शिखा से करना सूचन
मुझको प्रभु का निकट आगमन,
सुन प्रभु धनु हुंकार हिलेगी
स्वर्णपुरी कंपित हो थर् थर् !

यह प्रभु का सँदेश जग माता,
राम भूमिजा उर के ज्ञाता,
धरती सा धीरज धर काटो
अवधि शेष यह अंतिम वत्सर !

सुन मारुति के मलय से वचन
पुलकों से लद गया व्रतति तन,
लहरा उठा हृदय में सागर,
वाष्प घनों से गए नयन भर !

(११)

हे पावक वाहक, धन्य, धन्य !
जग धूम केतु से शिखा पुच्छ,
तुम उल्का से टूटे अनन्य !

सद्मों सौधों से अट्टों पर
ज्यों तड़ित नाचती शत तन धर,
लंका का ही उर दाह सुलग
अब उसे बनाता हो अरण्य !

ये दुर्ग हर्म्य जो स्वर्ण शिखर
परिताप पाप इनके भीतर,
ये भुज बल सत्ता के भूधर
हैं अड़े धरा पर अहम्मन्य !

धर दैन्य दुरित ही स्वर्ण रूप
हैं बने रक्षपति कीर्ति स्तूप,
तुम भूमि कंप से ज्वाल पंख,
शापों की गढ़ लंका जघन्य !

चिर अंध रूढियों में पोषित
जन गण धन मद बल से शोषित,
निज प्रजोत्कर्ष के विमुख सतत
राक्षस पति जन मन में नगण्य !

युग युग का कर्दम कलुप जला,
गत रीति नीति के शृंग गला,

तुम रक्ष प्रजा के लिए बनें,
जीवन चेतना शिखा वरेण्य !

(१२)

रक्त तरंगित आज सिन्धु तट !
गर्जन करते क्रुद्ध ऋक्ष कपि,
युद्ध छेड़ते कोटि वीर भट !

उड़ते क्या रघुकुल के शायक
छँटते शत असुरों के नायक,
शूर्पनखा के साथ रक्ष कुल
लक्ष्मी की नासिका गई कट !

भू लुंठित अब दनुजों का मद,
गड़ा शीष पर ज्यों अंगद पद,
कुंभकर्ण सी दानव निद्रा
सोने को चिर गई ज्यों उचट !

सूर्य रश्मि या राघव के शर ?
तिमिर तोम या दानव आकर ?
शत शत खड्ग शूल असि तन से
विद्युत् लपटों से रहे लिपट !

स्वर्णपुरी लोहित से लथपथ,
दनुज जाति का डूबा अब रथ,
गृद्ध शृगाल श्वान असुरों के,
अंतिम चिह्नों पर रहे झपट !

कैसे, देवि, रहेंगी जीवित
रक्ष पत्नियाँ हम, पति सुत मृत !
अब लंकेश विनाश उपस्थित,
विधि ने उनकी बुद्धि दी पलट !

... ...

आर्द्र नयन भूजा ने तत्क्षण
आर्तों का दुख किया निवारण,
आभा स्मिति से दे आश्वासन
खोल दिए ज्यों हृदय तमस पट !

(१३)

नीरव मेघनाद उर गर्जन !
शक्ति छोड़ रण में लक्ष्मण पर
देवि, हृदय ज्यों करता क्रंदन !

मन में सोचा, जाकर इस क्षण
करूँ पुण्य चरणों के दर्शन,
छू चेतन के छोर शक्ति मिस
जड़ मन का हट गया आवरण !

अंतिम अब दनुजों के कुछ क्षण
कहता है मुझसे मेरा मन,
प्राण भरेगा हरित धरणि में
दनुजों पर यह दृग जल वर्षण !

अथवा लक्ष्मण के हित शंकित
देवि, अश्रु जल करतीं मोचित,
करुण, काल कवलित दानव गण,
देवों के हैं ईश चिर शरण!

मृत्यु दनुज के लिए मान है,
ये राघव के मुक्ति बाण हैं,
सद् विकास का, देवि, असद् भी
इस जग में परोक्ष है कारण!

स्वाभिमान का जीवन जीवन,
चिर परिभव से श्रेष्ठ है मरण,
कल का सत्य मृषा बनता कल,
जब होते भव युग परिवर्तन!

भावी रहती नित्य तिरोहित,
हानि लाभ जीवन मरण रचित,
मेघनाद जीवन कृतार्थ अब
देख सत्य के ज्योति गति चरण!

(१४)

दुःसह वन के भीतर का वन!
निखिल वन गमन के कष्टों का
ज्यों दुख सार अशोक वन गहन!

वैभव तज चिर राज भवन का
प्रभु ने पकड़ा पथ जो वन का,

नाथ जानते रहे पंथ वह
जन गृह मंगल का चिर पावन !
कठिन भूमि कोमल पद गामी
वन में थे सँग प्रिय, भव स्वामी,
ज्ञात रहा अंतर्यामी को
असि पथ वन विहरण का कारण !

वाम नियति की व्यंग्य नाटिका
श्रुत अशोक वन शोक वाटिका,
विद्ध जहाँ खर शंकाओं से
मधुर भाव गामी मनश्चरण !
दानव माया से न पराजित
होंगे प्रभु के अनुज ऊर्ध्वचित्,
अधोमुखी जड़ शक्ति पाश से
मुक्त शीघ्र होंगे जग लक्ष्मण !

दुखी ऊर्मिला के दुख से मन,
अतल अश्रु वारिधि वह जीवन !
रोते होंगे उर में आँसू,
अधरो पर स्मित होगा आनन !

प्रकट न करते होंगे लोचन
वर्षो के चिर विरह का दहन,
लगता होगा राज भवन भी
भिक्षु कुटी सा, सूना निर्जन !

जिय बिन देह, नदी बिन वारी,
होगी प्रिय बिन वह सुकुमारी,
अह, कराहता होगा मर्मर
उर में मूर्त विरह अशोक वन ?

(१५)

स्वर्णपुरी यह, देवि, समर्पण !
लंकापति की मूर्ति गई गल,
सजल हिरण्य शेष अब पावन !

भर सुवर्ण में सौरभ महिमा
देवि, गढें रुचि संस्कृत प्रतिमा
सीता राम मयी सुर पूजित,
मानव बनें निखिल दानवगण !

दनुज जाति मर्यादा पथ पर
देवि, चलेगी बन प्रभु अनुचर,
एक हुए अब दक्षिण उत्तर,
धन्य आज का दिवस पुण्य पण !

पद धर पग चिह्नों पर पावन
सफल आज मंदोदरि जीवन,
अखिल धरा के शोक पाप हर
सत्य, अमर अब यह अशोक वन !

आते होंगे विजयी रघुवर,
देवि, विदा लेती रज छूकर,

फिर फिर नत मस्तक हो भू पर
प्रभु दासी मैं, दास विभीषण !

(१६)

'विरह प्रलय, प्रेयसि, प्रभव मिलन !
कब बिछुड़े हम और मिले कब
भूल गया मन सृजन निवर्तन !'

'फिर भी ज्योति पिंड तारे गिन ,
काटे मैंने विरह स्वप्न छिन ,'
'सच है, प्रिये, शून्य था शशि बिन
तारा भरा अनंत दिक् गगन !'

'गहन नील की प्रिये, कल्पना
क्या संभव शशि सूर्य के बिना ?
प्रकृति पुरुष में स्वयं द्विधा हो
करता ब्रह्म अभेद्य भव सृजन !'

'नाथ, मिलन क्षण आज प्रथम क्षण ,'
'प्रिये, स्वयंभू क्षण यह पावन !'
'राम, हमारा फिर फिर मिलना
संसृति का ज्यों नियम सनातन !'
'सच है, ज्ञात भेद तुमको पर ,
विरह मिलन से हो तुम ऊपर ,
जगत जननि तुम, तुमने जग हित
किया धरा पर आज अवतरण !'

(१७)

सीते, विजय मनाते जनगण !

ये आनंद अश्रु क्षण तेरे
करें ज्योति कण भू पर वर्षण !

मुक्त आज भू, मुक्त निखिल जन,
दानव मुक्त, मुक्त भव जन मन,
देवि, तुम्हीं वह मुक्ति रूप, यह
मुक्ति प्रतीति बने, नव बंधन !

सूर्य प्रभव रघुवंश पुरातन,
अंश उसी का एक हुताशन,
ऊर्ध्व प्राण आकांक्षाओं का
जो अनंत अक्षय चिर कारण !

लोक कामना का वह पावक
धधक रहा अनादि से धक धक,
देवि, प्रवेश करो तुम उसमें,
यह चेतना परीक्षा का क्षण !

'क्षिति जल अग्नि पवन नभ से पर
जो ध्रुव राम अमर चिर अक्षर,
मैं प्रविष्ट जीवन पावक में,
असंदिग्ध चिर हो भव जन मन !'

'धन्य देवि, सीते, सखि, प्यारी !'
'धन्य जग जननि, जनक दुलारी !

ज्वाला वसने, आभा दशने,
धरो धरा पर ज्योति श्री चरण!'

(१८)

'प्रभु, क्यों ली यह अग्नि परीक्षा?
सत्यसिन्धु, संशय के तम से
करें विभीषण की निज रक्षा!

'सृजन वह्नि यदि ईश तेज कण
तव क्या नहीं स्वयं वह पावन?
जलज जीव, प्रभु, सहज तरल जो
उसको कठिन अनल की दीक्षा!

'साक्षी राम विना क्या सीता
नहीं दिव्य, जग जननि पुनीता?
ईशावास्यमिदं न सर्व शुचि?
गुह्य ज्ञान की दें प्रभु भिक्षा!'

'विश्व चेतना में प्रकाश तम,
परम चेतना में न द्वन्द्व भ्रम,
सुनो रक्ष, लक्ष्मण का उत्तर,
ब्रह्म तत्व की गहन समीक्षा!

'चिर अक्षर ही जीवों में क्षर,
स्वयं मुक्त वह पूर्ण परात्पर,

विश्व विवर्तन क्षर विकास की
है अनंत शाश्वती प्रतीक्षा !

'नित सत् राम, शक्ति चित् सीता,
अखिल सृष्टि आनंद प्रणीता,
प्रकृति शिखा सी उठे, शक्ति चित्
उतरे, निहित जगत में शिक्षा !'

(१९)

हनुमत रज का, नाथ, निवेदन !
जय जय जगत जननि, तम नाशिनि,
जय जय राम, पतित जन पावन !

क्षमा करें, यदि पवन सुत चपल,
तात दाय यह, जीवन संबल,
जननि दयांचल से संचारित
जगत्प्राण जो, पावक वाहन !

स्वामि पादुका का कर पूजन
गिनते भरत अश्रु से अनुक्षण,
सपदि अयोध्या चलें नाथ जो
भक्ति-धन्य हो भरत प्रभु मिलन !

हे घटवासी, दे हृदयासन
सतत प्रतीक्षा में भव के जन,
राज्यारोहण करें जननि युत,
चिर महिमान्वित हो मानव मन !

रिक्त पूर्ण हो, खंड हो सकल,
जीवनाब्धि हो विन्दु विन्दु जल,
जय जय सीता राम, जयति जय,
जय लक्ष्मण, जय भरत शत्रुहन्!

ज्वाला वसने, आभा दशने,
धरो धरा पर ज्योति श्री चरण !'

(१८)

'प्रभु, क्यों ली यह अग्नि परीक्षा ?
सत्यसिन्धु, संशय के तम से
करें विभीषण की निज रक्षा !

'सृजन वह्नि यदि ईश तेज कण
तब क्या नहीं स्वयं वह पावन ?
जलज जीव, प्रभु, सहज तरल जो
उसको कठिन अनल की दीक्षा !

'साक्षी राम विना क्या सीता
नहीं दिव्य, जग जननि पुनीता ?
ईशावास्यमिदं न सर्व शुचि ?
गुह्य ज्ञान की दें प्रभु भिक्षा !'

'विश्व चेतना में प्रकाश तम,
परम चेतना में न द्वन्द्व भ्रम,
सुनो रक्ष, लक्ष्मण का उत्तर,
ब्रह्म तत्व की गहन समीक्षा !

'चिर अक्षर ही जीवों में क्षर,
स्वयं मुक्त वह पूर्ण परात्पर,